प्रकाशक—
'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

मुद्रक—
आर० सहगल,
फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,
इलाहाबाद

उपहार

भूमिका

लोग आयुर्वेद-ज्ञान-शून्य होने से एक छोटी सी बीमारी में भी वैद्य या डॉक्टर बुलाकर चिकित्सा कराते हैं, और जो बीमारी दो-चार आने की औषधि से अच्छी हो सकती है, उसमें प्रथम तो वैद्य की फ़ीस ही पाँच रुपया देनी पड़ती है—औषधि की कीमत अलग रही। ऐसी छोटी-छोटी बीमारी मनुष्यों को सदा हुआ करती हैं, जिनमें उनको साधारण आयुर्वेद-ज्ञान न होने के कारण अधिक व्यय तथा कष्ट उठाना पड़ता है। बहुत से रोग ऐसे भी हैं, जो उच्च-कोटि की औषधियों से अच्छे न होकर बहुत छोटे-छोटे प्रयोगों द्वारा शान्त होते दिखाई देते हैं। इन बातों का पूर्ण रूप से ध्यान रखते हुए हमने इस पुस्तक को लिखने का प्रयत्न किया है, जिससे सर्व-साधारण को लाभ पहुँच सके। पुस्तक के लिखने में हमको कविराज श्री० गणनाथ सेन, एम० ए०, एल० एम० एस० द्वारा लिखित 'संक्षिप्त गृहस्थ-

चिकित्सा' नामक पुस्तक से बहुत-कुछ सहायता मिली है, इसलिए हम कविराज जी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं। यदि निर्धन तथा रोगी गृहस्थियों को इस पुस्तक से कुछ भी लाभ पहुँचा, तो हम अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे।

—लेखक

विषय-सूची

उपयोगी चिकित्सा

विषय-प्रवेश

अनेक बार देखा गया है कि कोई रोग बहुत सा बहुमूल्य औषधियों के प्रयोग करने पर भी शान्त नहीं होता, प्रत्युत एक साधारण दो-चार पैसे की औषधि से शान्त हो जाता है। मैं समझता हूँ कि यही बात है, जो चरक-सुश्रुतों में दो-एक स्थानों के सिवाय प्रायः सभी जगह अल्पमूल्य काष्ठादि औषधियों का ही प्रयोग लिखा गया है। "चरकस्तु चिकित्सिते" इसका भी मतलब यही निकलता है कि चरक-चिकित्सा इस वास्ते श्रेष्ठ है कि उसमें एक तो चिकित्सा का ढङ्ग अति ही सरल रीति से लिखा गया है और साथ ही रोग को समूल नष्ट करने के लिए क्काथ आदि का अत्यन्त लाभदायक वर्णन किया गया है। दूसरे यह है कि क्काथ आदि की औषधियाँ

अल्पमूल्य और सुगमता से मिलने वाली होती हैं। इसी विचार को लेकर हमने इस "उपयोगी चिकित्सा" को लिखने का प्रयत्न किया है। इसमें जन-साधारण के उपयोग में लाने के लिए बहुत सुगम योगों का वर्णन किया गया है। ऐसे बहुत से रोग होते हैं, जिनमें रोग-विज्ञान का साधारण ज्ञान होने और थोड़े औषधि-प्रयोगों के जानने से वैद्य तथा डॉक्टर लोगों की शरण नहीं लेनी पड़ती। ऐसे रोगों में वैद्य तथा डॉक्टरों की सहायता न लेने पर भी इस पुस्तक से चिकित्सा का काम चल सकता है। इस पुस्तक में ऐसे ही साधारण रोगों की चिकित्सा-प्रणाली का वर्णन है, जो साधारण होते हुए भी वैद्यों द्वारा चिकित्सा कराने से अधिक व्यय की आवश्यकता रखते हैं। इसमें लिखा हुआ प्रयोग-संग्रह प्रधान रूप से आयुर्वेदीय है; किन्तु जो बातें आवश्यक और विशेष लाभदायक हैं, वे डॉक्टरी से भी संग्रह की गई हैं। इस बात के कहने की विशेष आवश्यकता नहीं कि इस पुस्तक में लिखित प्रयोग-संग्रह अनुभूत तथा गृहस्थ मात्र के लिए विशेष उपयोगी हैं। उचित रूप से प्रयोग करने पर इन योगों द्वारा अल्प व्यय या बिना व्यय के बहुत से रोगों की अनुत्पत्ति तथा पूर्ण रूप से शान्त रहने की आशा रहती है।

यहाँ पर यह कहना अत्यन्त आवश्यक है कि केवल इस पुस्तक में लिखित प्रयोग-संग्रह द्वारा ही सम्पूर्ण रोगों से मुक्त होने की कल्पना न करनी चाहिए; किन्तु रोग की अवस्था और लक्षण आदि में यदि कोई कठिनता और गुरुतर भाव बोध

हो, तो उसी समय किसी सुयोग्य वैद्य तथा डॉक्टर को बुला कर चिकित्सा करानी चाहिए।

रोगों के विषय में लिखने के पहले यहाँ पर हम कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का वर्णन करते हैं; क्योंकि स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने से मनुष्य रोगी नहीं हो सकता। यदि कदाचित् कोई रोग उत्पन्न हो भी जाय, तो वह भयङ्कर नहीं होता; और उसका प्रतिकार भी सुगमता से हो सकता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य के नियम अवश्य पालन करने चाहिए।

स्वास्थ्य के नियम

रहने का मकान या कमरा खूब साफ़ होना चाहिए; और उसमें मकड़ी के जाले, सड़ी-गली चीज़ें, मच्छर-मक्खी आदि न होने चाहिए। मकान या कमरा खूब हवादार होना चाहिए। अशुद्ध वायु में और विशेषकर ऐसी वायु में, जिसमें रोगोत्पादक कीटाणुओं के होने की सम्भावना हो, कभी न रहना चाहिए।

२—केवल शुद्ध और स्वच्छ जल तथा खाद्य पदार्थों का व्यवहार कीजिए। अधिक न खाइए, ताज़ा भोजन और सुन्दर पके फल आवश्यक प्रमाण में ही खाइए। भोजन धीरे-धीरे खूब चबा कर, नियमित रूप से, पथ्य-सहित करना चाहिए। शरीर को स्वस्थ, पुष्ट और बलवान् बनाने वाला सादा और पौष्टिक भोजन करना चाहिए। स्वाद के वशीभूत होकर स्वास्थ्य ख़राब करने वाली चीज़ों को न खाना चाहिए।

३—भोजन करने के पहले और पीछे हाथ-पैर और मुँह अवश्य धोना चाहिए।

४—दतौन आदि से सदा मसूड़े, दाँत और जीभ साफ़ रखने चाहिए।

५—प्रतिदिन प्रातःकाल साबुन या उबटन से शरीर को अच्छी तरह मल कर, स्वच्छ जल से स्नान करना और त्वचा तथा हाथ-पैरों को साफ़ रखना चाहिए।

६—अपने पेशे और ऋतु के अनुकूल साफ़ और ढीले कपड़े पहिनने चाहिए।

७—सूर्य के प्रकाश में रहना चाहिए। कमरे या मकान में काम करने पर भी शुद्ध वायु तथा सूर्य की किरण आवश्यकता के अनुकूल सेवन करनी चाहिए।

८—खुली, हवादार जगह में सोना और रात्रि को शीघ्र सोना तथा प्रातःकाल चार बजे उठना चाहिए। अधिक से अधिक आठ और कम से कम छः घण्टे सोना चाहिए।

९—छूत और उसके जहर से सदा बचना चाहिए। खूब शान्त और प्रसन्नचित्त रहना और जहाँ तक हो सके चिन्ता न करना चाहिए; क्योंकि इससे स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है।

१०—नशे की चीज़ों को कभी सेवन न करे, वेश्यागामी और व्यभिचारी मनुष्यों से सदा दूर रहे। अपने मकान, पाख़ाना और नालियों को प्रति दिन फ़िनाइल के जल से साफ़ कराना चाहिए। मकान में पशु आदि के रहने का प्रबन्ध न करना चाहिए।

११—सड़ा-गला, बासी, दुर्गन्धित भोजन न करना चाहिए। सांक्रामिक रोगों में विशेष कर जल पका कर पीना चाहिए; और बाज़ार की चीजें—पूरी-कचौड़ी, दूध-दही आदि न खाने चाहिए।

१२—उपरोक्त बातों पर ध्यान रखते हुए मनुष्य को अपने धर्म

के अनुसार ईश्वर-भजन तथा परोपकार करना चाहिए। पाप-कर्मों से वचना और सत्सङ्ग आदि करना चाहिए।

अव इसके वाद रोगों के विपय में लिखा जाता है। चिकित्सा करने में रोगी की सेवा उसका प्रधान अङ्ग है; क्योंकि वैद्य और औपधि रोगी के योग्य होने पर भी यदि रोगी की सेवा यथोचित नहीं की जाती, तो उसका अच्छा होना कठिन हो जाता है। इसलिए यहाँ पर रोगी की सेवा के विपय में कतिपय आवश्यकीय उपदेश लिखे जाते हैं, जिनका रोग के विपय में सर्वदा स्मरण रखना विशेप लाभदायक सिद्ध होगा।

रोगी की परिचर्या

रोगी के लिए चिकित्सा से भी अधिक आवश्यकता पथ्य की है। पथ्य को आवश्यकता होने पर इस प्रकार का वनाया जाय, जिससे कि रोगी के शरीर में वल वढ़े और रोग भी शान्त रहे; किन्तु उसके वारे में यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि स्वादिष्ट होने के कारण रोगी उसे अधिक प्रमाण में न खाए और न कभी अज्ञानवश कुपथ्य चीजों को स्वादिष्ट होने के कारण खाने पाए।

२—रोगी का घर व कमरा इस प्रकार का होना चाहिए, जिसमें यथेष्ट प्रमाण में शुद्ध वायु का आवागमन होता हो। श्वास, कास, श्वसनक-ज्वर (निमोनिया), श्लेष्मक-ज्वर (इन्फ्लुएन्जा), राजयक्ष्मा प्रभृति रोगों में शुद्ध वायु का सेवन आधी चिकित्सा के समान होता है; किन्तु इस वात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि रोगी के शरीर में किसी प्रकार की प्रवल या अत्यन्त शीतल वायु न लगे। वहुत से अज्ञानी तथा ग्रामीण मनुष्य वायु से इतना डरते हैं कि वे स्वस्थावस्था में भी दरवाजे और खिड़की आदि वन्द रखते हैं, यहाँ तक कि वायु आने के

छोटे-छोटे छिद्रों को रूई भर कर बन्द करके सोया करते हैं। यह अभ्यास अत्यन्त हानिकारक है। हाँ, झड़ और वर्षा की वायु अवश्य अस्वस्थकर है; किन्तु स्वाभाविक वायु-सञ्चार के मार्गों को सभी ऋतुओं में, प्रत्येक समय में खुले रखना अत्यन्त आवश्यक है। सोते समय आवश्यकतानुसार पहनने या ओढ़ने के कपड़े रखना आवश्यक है, रोगी के पास आत्मीय जनों का अधिक आना-जाना या बैठे रहना बहुत हानिकारक है। रोगी के कमरे में मिट्टी के तेल का दीपक तथा अग्नि नहीं रखनी चाहिए। इसी तरह वहाँ पर तम्बाकू या सिगरेट का पीना भी हानिकारक है; क्योंकि इन कारणों से वायु दूषित हो जाती है।

३—रोगी की शय्या व बिछौने, ओढ़ने-पहनने के कपड़े आदि को सर्वदा धुले, साफ़ और सूखे रखने चाहिए। बिछौने की चादर या पलँग-पोश और तकिया-गिलाफ़ के कपड़ों को प्रत्येक दिन बदल कर साबुन के जल में पका-धोकर शुद्ध रखना चाहिए। गर्मी के दिनों में अधिक मोटे कुर्ते और चादरों का व्यवहार हानिकारक है; किन्तु शीतकाल में यथेष्ट रूप से शीत-निवारक वस्त्रों का रखना उपयोगी है।

४—रोगी की नासिका, मुख, जीभ, दाँत और आँखों को प्रति दिन दो बार गर्म या ठण्डे जल से धोना और साफ़ रखना चाहिए। दाँतों की शुद्धि के लिए कोई उत्तम दन्त-मञ्जन तैयार करके रखना और उसे ब्रुश या उँगुली द्वारा काम में लाना चाहिए।

५—रोगी के साथ हर एक आदमी को सदैव प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए, जिससे उसका मन प्रसन्न रहे; और उसे अपने रोग का साध्य-असाध्य भाव का कुछ ज्ञान (चिन्ता) न रहे। रोगी का कुपथ्य-सेवन में मन चलने पर उसको बहुत मधुर वाणी से समझा देना चाहिए कि यह चीज़ तुम्हारे योग्य नहीं है; और इसके खाने से अमुक हानि होती है। तुम्हारे अच्छे होने पर सभी चीज़ तुमको दी जाएगी; किन्तु कटु शब्दों का निष्ठुरता से प्रयोग न करना चाहिए।

६—रोगी के सामने उसके रोग की असाध्यता या कष्ट-साध्यता का वर्णन न करना चाहिए; और न यही कहना चाहिए कि यह अच्छा न होगा; और दूसरों के उस प्रकार के रोगों का भी वर्णन न करे, जिनको कि रोगी स्वयं देख चुका हो।

७—वैद्य या डॉक्टर के उपदेश के सिवाय रोगी को किसी प्रकार का शरीरिक या मानसिक परिश्रम न करने देना चाहिए। दुर्बल रोगी को पेशाब और पाख़ाना करने के लिए दूर न जाने देना चाहिए। अत्यन्त दुर्बल रोगी को बिछौने में ही मल-मूत्र कराना चाहिए।
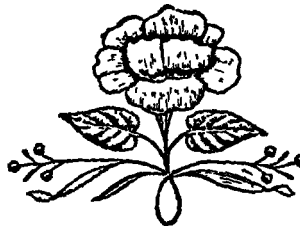
रोगों का प्रतिषेध

जिन चीज़ों से रोग उत्पन्न होते हों, उनका व्यवहार न करना या उनसे बचे रहना रोग-प्रतिषेध कहा जाता है । विषूचिका (हैज़ा), महामारी (प्लेग) और विषम-ज्वर (मलेरिया) आदि रोगों का जिस प्रकार प्रतिषेध हो सकता हो, अवश्य करना चाहिए। इन रोगों में केवल अदृष्ट (भाग्य) का दोष बताना अत्यन्त आलस्य और अज्ञानता है। इस प्रकार के रोगों का प्रतिषेध निम्नलिखित रूप से करना चाहिए; और ऐसे रोगों के लिए पूर्व-लिखित स्वास्थ्य-नियमों को पूर्णरूप से पालन करना चाहिए :—

१—मार्ग के चारों तरफ़ किसी प्रकार का जल न रुके, इस विषय में विशेष ध्यान रखना चाहिए। आने-जाने वाले मार्ग के समीप के स्थानों में जल के जमाव के कारण या अशुद्ध तालाब, पोखर आदि के होने पर उनमें बहुत से ज़हरीले कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। ये जल-कीड़े पहले अण्डों के आकार में होकर, कालान्तर में मच्छरों को पैदा कर देते हैं, इस बात को बहुत कम मनुष्य जानते हैं। अधिक मच्छरों के पैदा होने पर निद्रा का

व्याघात (न आना) तो होता ही है, इसके सिवाय इनके द्वारा अनेक प्रकार के रोगों के उत्पन्न होने की विशेष सम्भावना रहती है । डॉक्टरी परीक्षा द्वारा पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका है कि एक प्रकार के मच्छर (Anopheles) होते हैं, जो कि काट कर शरीर में विष द्वारा विषम-ज्वर (मलेरिया) को उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार के मच्छर अधिकतर ऐसे जल में होते हैं, जो रुका हुआ, अशुद्ध और हरी पत्तियों, बेल, तृण, सेवार आदि से व्याप्त हो । एक प्रकार के मच्छर कुलेक्स (Culex) होते हैं, जो श्लीपद (पील पाँव), अण्ड-वृद्धि आदि रोगों के जीवाणुओं को शरीर में फैला देते हैं । मार्ग के चारों तरफ जङ्गल का होना भी अत्यन्त हानिकारक है ।

२—तालाब और पोखर में मल-मूत्र त्याग करने, जल में शौचादि करने, उसमें मल-मूत्र या सड़ी-गली चीजों के डालने, हाथ-पैर और कपड़े धोने, स्नान करने, थूकने तथा मल-मूत्र के वस्त्रों को धोने और जूठे बर्तनों के डालने से विकृति आ जाती है । इस प्रकार के निन्दनीय अभ्यास से अतिसार, अग्निमान्द्य, अर्श आदि असंख्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं । पीने वाले जल व कुँए के समीप मल-मूत्रादि का त्याग करना और चारों तरफ़ सड़े हुए पानी के गड्ढों का होना विशेष हानिकारक है ; क्योंकि इन चीजों से विकृत जल धीरे-धीरे पृथ्वी में प्रवेश करता हुआ कूप आदि के पानी को ख़राब कर देता है । पीने के जल को जान-बूझ कर या अज्ञानवश मैला करना महापाप है । इस अज्ञानता को हिन्दू-शास्त्रकारों तथा डॉक्टरों

ने भी बार-बार निषेध किया है; परन्तु बहुत से प्रान्तों (बङ्गाल, पञ्जाब आदि) में इस कुत्सित कार्य का ज्यादा अभ्यास है। वहाँ के लोग जल के समीप ही मल-मूत्र त्याग करते हैं, यहाँ तक कि उक्त देशों की स्त्रियाँ स्नान के समय जल में ही पेशाब, थूकना, छिनकना आदि क्रियाएँ करती हैं। इसका फल यह होता है कि भयङ्कर रक्तातिसार, विषूचिका आदि के प्रकोप से हज़ारों मनुष्य प्रति वर्ष मृत्यु के मुख में जाते हैं। जिस जल में या जिसके चारों तरफ़ सौ हाथ की दूरी पर शौचादि क्रियाएँ की जाती हैं, उसका जल कभी भी पीने के काम में न लाना चाहिए। इसीलिए पीने के जल वाले कुएँ, तालाब आदि के चारों तरफ़ भूमि को बहुत दूर तक साफ़ रखने की आवश्यकता है, जिससे जल में किसी प्रकार की विकृति न आने पाए। यदि किसी अशुद्ध जल वाले कूप या तालाब के पास कोई शुद्ध जल वाला कूप या तालाब हो, तो उसका जल बिना शुद्ध किए हुए न पीना चाहिए; क्योंकि उसमें भी समीप के अशुद्ध जल वाले कुएँ या तालाब के सम्बन्ध से कुछ न कुछ विकृति अवश्य आ जाती है। जल शुद्ध करने की विधि नीचे लिखी जाती है :—

जल-शोधन विधि—यदि कहीं शुद्ध जल न मिल सकता हो, तो जल को अग्नि में अच्छी तरह पका कर एक-दो उबाल देकर उसमें निर्मली (कतक) के फल या थोड़ी सी फिटकरी (एक सेर जल में दो रत्ती के हिसाब से) डाल कर रख दे, साफ़ और ठण्ढा हो जाने पर धीरे-धीरे ऊपर के जल को किसी कपड़े से छान कर

रख ले। फ़िल्टर किया हुआ जल सब प्रकार से उत्तम होता है। पहले जल को फ़िल्टर करके बाद में पका लिया जाए, तो वह पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाता है; किन्तु यदि जल में कोई विशेष दोष न हो, तो फ़िल्टर से शुद्ध करना ही पर्याप्त है।

फ़िल्टर करने की विधि—जल को फ़िल्टर करने के लिए मिट्टी के चार नए घड़ों को लेकर एक-दूसरे के ऊपर रक्खे। ऊपर के तीन घड़ों के नीचे तले में एक छोटा सा छेद कर दे, ऊपर के घड़े में जल दूसरे में आधे हिस्से में लकड़ी के कोयले, तीसरे में आधे से कुछ अधिक बालू (रेत) भर दे। नीचे का घड़ा ख़ाली रखना चाहिए, इस प्रकार करने से जल पहिले घड़े से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में, धीरे-धीरे टपकता हुआ कोयले और रेत द्वारा शुद्ध होता हुआ चौथे-घड़े में भर जाता है। इन घड़ों को एक बाँस या किसी लकड़ी की तिकोनी घडौंची के ऊपर रख कर पानी को शुद्ध करना बहुत अच्छा है। यह जल अत्यन्त शुद्ध और स्वास्थ्यकर है।

यदि उक्त उपाय न हो सके, तो अशुद्ध जल को शुद्ध करने के लिए एक साफ़ कपड़े से छान लेना ही पर्याप्त है। वर्षा को छोड़ कर दूसरी ऋतुओं में शीघ्र बहने वाली पथरीली नदियों का जल भी शुद्ध और स्वास्थ्यकारक होता है; और जिस भूमि में पत्थर और बालू (रेत) अधिक होते हैं, उसकी नदी या कुएँ का जल भी शुद्ध और स्वास्थ्यकर होता है। इसीलिए लोग कुओं को बहुत गहराई तक खुदवाते हैं; क्योंकि गहराई में रेत वा पत्थर पर्याप्त होते हैं।

विषम-ज्वर का प्रतिषेध
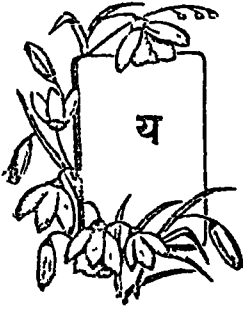
ह ज्वर अधिकतर तराई या पर्वत के समीपस्थ देशों में होता है। इसके प्रतिषेध का यह उपाय है कि मार्ग के समीप के छोटे-छोटे जङ्गल या झाड़ियों को काट देना और अशुद्ध तथा गन्दा जल जहाँ रुका हो, उसको साफ़ कर देना तथा ऐसे गड्ढों में जहाँ पर कि जल रुक जाया करता हो, जल निकाल कर मिट्टी से बराबर या कुछ ऊँचा कर देना चाहिए। सड़े कुँए और ऐसे गन्दे तालाब, जिनका कि साफ़ करना सम्भव नहीं है, उनके लिए प्रति सप्ताह एक-दो बोतल मिट्टी का तेल उनमें छोड़ देना बहुत लाभकारक है, इससे मलेरिया उत्पन्न करने वाले मच्छर बहुत-कुछ नष्ट हो जाते हैं। इसके सिवाय प्रति दिन शरीर में सरसों का तेल ख़ूब अच्छी तरह मलना चाहिए। खाट और तख़्त के ऊपर मसहरी लगा कर सोना चाहिए; क्योंकि हम पहले बतला आए हैं कि मलेरिया-ज्वर एक प्रकार के मच्छरों के काटने पर विष से उत्पन्न होता है; और वह उन्हीं मच्छरों द्वारा रोगी के शरीर से दूसरे स्वस्थ मनुष्य के शरीर में भी फैल जाता है!
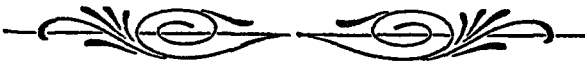
विषूचिका-प्रतिषेध
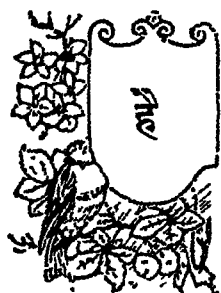
ज़े के दिनों में अशुद्ध जल को शुद्ध करके या फ़िल्टर द्वारा अथवा अन्य उपाय से शुद्ध करके पीना चाहिए। यह बात विशेषकर उन मनुष्यों के लिए समझनी चाहिए, जिनके आस-पास या मुहल्ले अथवा ग्राम में बीमारी फैली हुई हो या जिनका जल-स्थान एक हो; और जहाँ पर केवल नहरों का पानी पीने को मिलता हो, उन स्थानों में भी जल को शुद्ध करके पीने की आवश्यकता है; क्योंकि लोग विषूचिका के रोगी के वस्त्रों को नहरों में धोया करते हैं।

हैज़े वाले रोगी की सेवा करने पर रोगी के मल-मूत्र और क़ै हाथ-पाँव या पहने हुए कपड़ों में न लगनी चाहिए और भूल से भी खाने-पीने की चीज़ों के साथ पेट में न चली जाय, इस विषय में पूरी सावधानी रखनी चाहिए। ऐसे अवसर में खाने-पीने के समय कपड़ों को बदल कर और हाथ-पैरों को साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिए। रोगी के मल-दूषित वस्त्रादि को जला देना सबसे अच्छा है। यदि उनको काम में लाना हो, तो धोने के पहले वस्त्रादि को तूतिए के जल में (एक तोला

तूतिया में, दो सेर जल) एक घण्टे तक भिगा कर रख देना चाहिए। पश्चात् खूब गर्म पानी में पक्का साबुन लगा कर अच्छी तरह झींटना चाहिए और धूप में सुखा लेना चाहिए; किन्तु यह बात याद रहे कि उन वस्त्रादि को तालाब में या कुएँ के समीप कभी न धोए; क्योंकि ऐसा करने से बड़ी भारी हानि होती है। रोगी के मल और क़ै को जहाँ-तहाँ न फेंक देना चाहिए, बल्कि उनके बराबर तूतिए का जल मिला कर दोनों को मट्टी के गहरे गड्ढे में गाड़ देना चाहिए। यह भी याद रहे कि ऐसे मल को तालाब और कुएँ से सौ हाथ की दूरी से कम जगह पर कभी न गाड़े।

रोगी के मल में मक्खी न बैठने पाए, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि मक्खियाँ मल के ऊपर बैठ कर अपने पैरों से क़ै या मल के विष को खाने-पीने की चीज़ों में बैठ कर छोड़ देती हैं, जिससे वे ख़राब हो जाती हैं; और उनके खाने से विषूचिका उत्पन्न हो जाती है। इसलिए हैज़े के दिनों में खाने-पीने की चीज़ों को मक्खियों से बचाने के लिए हर समय ढँक कर रखना चाहिए।

अन्यान्य सांक्रामिक रोगों का प्रतिषेध

न्यान्य सांक्रामिक व्याधियों में से बसन्त-रोग (शीतला), आन्तरिक ज्वर, श्वसनक-ज्वर (निमोनिया) आदि का प्रतिषेध करना भी अत्यन्त आवश्यक है। शीतला को बँगला में वसन्त-रोग, हिन्दी में माता और अङ्गरेज़ी में स्मालपॉक्स (Small-pox) कहते हैं। यह एक छूत वाला रोग है। इसका विष दूसरे के शरीर में संक्रमण कर जाता है। यह रोग कितना भयानक है, इसके लिखने की आवश्यकता नहीं। जब यह मरी की भाँति फैलता है, तो इससे गाँव के गाँव और शहर उजड़ जाते हैं, इसलिए इससे बचने के लिए निम्नलिखित उपदेशों पर ध्यान देना चाहिए:—

१—इसके प्रकोप के समय मेले, तमाशे, तीर्थ और थिएटरों में न जाना चाहिए, और न वहाँ की किसी चीज़ को अपने काम में ही लाना चाहिए; विशेषकर बाज़ार की खाने-पीने की चीज़ें बिलकुल ही छोड़ देनी चाहिए। एक मकान में बहुत से मनुष्यों का रहना भी उचित नहीं है।

२—यदि किसी रोगी को देखने का मौक़ा पड़ जाय, तो दूर से देखना और वातचीत करना चाहिए। रोगी के कमरे में खुली हवा में खड़ा रहना चाहिए और उस कमरे के किसी भी स्टूल, कुर्सी, खाट, पलँग, दरी आदि पर न वैठना चाहिए।

३—शीतला के प्रकोप में अपने कपड़े साफ़ रखने चाहिए। जव कभी वाहर से आए, तो पहने हुए कपड़ों को वाहर ही किसी खूँटी में टाँग दे और फिर हाथ-पैर धोकर दूसरे कपड़ों को पहने तथा खाने-पीने की चीज़ों को छुए।

४—घर में ही ऐसा रोगी होने पर वच्चों और गर्भवती स्त्री को दूसरे स्थान में रखना चाहिए और रोगी के कमरे में खाने-पीने की चीजें तथा ओढ़ने-विछाने के कपड़े, मेज़, कुर्सी आदि कोई भी वस्तु न रखनी चाहिए। इसके सिवाय पूर्व-लिखित स्वास्थ्य के नियमों को पूर्ण रीति से पालन करना चाहिए।

५—शीतला के प्रकोप होने पर टीका लगाना अत्यन्त आवश्यक है। यह टीका विना रोग के हर तीसरे-चौथे वर्ष में लगा लेना अत्युत्तम है। वच्चों के लिए पहले ही साल में टीका लगाना उत्तम है। इसके लगाने से शीतला-रोग का भय नहीं रहता; क्योंकि इसके लगाने से साधारण-ज्वर केवल तीन-चार दिन तक रहता है और किसी प्रकार की विकृति नहीं होती है। वाद में टीका लगने पर माता निकल आएँ, तो वह वहुत कमज़ोर और शीघ्र ही सूखने वाली होती हैं, और छः-सात दिन में विलकुल आरोग्यता हो जाती है।

६—रोगी के वस्त्रादि को प्रति दिन तूतिए के जल में साफ़ करना चाहिए। शरीर की त्वचा गलने पर नीम के पत्ते और हल्दी का चूर्ण हर समय शरीर में लगाना चाहिए; और उतरी हुई त्वचा को कम से कम दो घण्टे तूतिए के जल में डाल कर बाद को ज़मीन में गाड़ देना चाहिए।

७—शीतला के रोगी के पास हर एक आदमी को आना-जाना नहीं चाहिए। केवल एक ही मनुष्य को उसके पास सदा स्वच्छ भाव से रहना चाहिए।

इन्फ्लुएन्ज़ा

यह एक प्रकार का सान्निपातिक श्लेष्मकज्वर है। कभी-कभी यह भी मरी की भाँति फैलता है। इससे हज़ारों मनुष्य मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। इसके प्रकोप के समय प्रतिश्याय (ज़ुक़ाम) से बचना तथा विशेष ठण्ढ न लगने देना चाहिए। हो सके तो पेट की शुद्धि के लिए इन दिनों हलका जुलाब ले लेना चाहिए और खाने-पीने में विशेष ध्यान रखना चाहिए।

राजयक्ष्मा, निमोनिया आदि के रोगियों का कफ पीकदान या किसी बर्तन में रखना चाहिए। ऐसे रोगियों के कफ को इधर-उधर दीवार या कपड़ों में लगाना या फेंकना नहीं चाहिए; क्योंकि दीवारों पर चिपका हुआ कफ कालान्तर में सूख कर कीटाणुओं द्वारा वायु के साथ दूसरों में प्रवेश होकर सांक्रामिक रोग पैदा कर देता है। इसलिए पीकदान में कुछ तूतिया या फ़िनाइल का जल भर कर थूकना और सायङ्काल को उसे दूर ज़मीन में गड्ढा खोद कर गाड़ देना चाहिए। पीकदान न होने पर

किसी पात्र में राख या धान की भूसी आदि भर कर थूकना और गाड़ देना चाहिए। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि कोई भयानक लक्षण वाली व्याधि उत्पन्न हो जाय, तो उसके लिए किसी योग्य चिकित्सक की पूरी सहायता लेनी चाहिए। इसलिए ऐसे रोगों की चिकित्सा प्रयोग-संग्रह से न हो सकेगी, अतः योग्य चिकित्सक की सहायता लेना आवश्यक है।

आतशक और सूज़ाक

आ

युर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है कि आतशक रोग आगन्तुक है, अर्थात् यह बहुधा फिरङ्ग देश की स्त्रियों के प्रसङ्ग से पैदा होता है, इसलिए उक्त ग्रन्थों में इस रोग को फिरङ्ग-रोग के नाम से लिखा है। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों रोग (आतशक व सूज़ाक) दुष्ट योनि वाली स्त्री के प्रसङ्ग से उत्पन्न होते हैं। मैली-कुचैली, व्याधि-ग्रसित तथा योनि-रोग से पीड़ित स्त्रियों के प्रसङ्ग बिना वर्तमान काल में इस रोग का होना बहुत कम पाया जाता है। नाम मात्र के आनन्द को चाहने वाले दुष्ट-मनुष्यों को इस कुसङ्ग से कैसी-कैसी भयानक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं; इस बात का प्रत्येक मनुष्य को ध्यान रखना आवश्यक है। इन रोगों से बचने का सरल उपाय यह है कि ऐसे रोगों के स्पर्शास्पर्श से दूर रहना चाहिए; और रोगी के कपड़े-लत्ते अथवा उसके हाथ की छुई हुई वस्तुओं से परहेज़ रखना चाहिए। ऐसे रोगी के पेशाब के ऊपर पेशाब न करना और न उसकी दी हुई औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। सांक्रामिक रोगों की छूत के लगने में अन्यान्य कारणों के साथ नाई के उस्तरे आदि औज़ारों की भी गणना है;

क्योंकि वे लोग हर एक मनुष्य के चौरादि कार्य में उन्हीं औज़ारों को काम में लाते हैं, जो पहले किसी सांक्रामिक रोग वाले के व्यवहार में आए हों। ऐसे औज़ारों से चौरादि करने पर अनेक प्रकार के चर्म-रोग, फोड़े-फुन्सी आदि के साथ भयङ्कर आतशक आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं; इसलिए प्रत्येक मनुष्य को चौरादि कर्म के निमित्त अपने औज़ार अलग रखने चाहिए।

पूर्वोक्त रोग-प्रतिषेध के सिवाय सांक्रामिक रोगों के लिए धर्म-शास्त्रानुकूल शौचाचार का पालन करने से सांक्रामिक व्याधियों का भय बहुत कम रहता है। इसलिए मनुष्य को स्वास्थ्य-रक्षा के निमित्त शुचि (पवित्र) तथा सदाचारयुक्त रहना चाहिए।
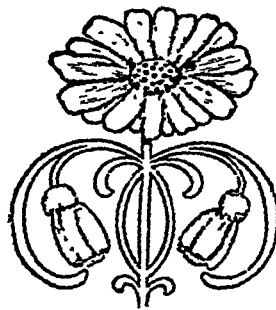
चिकित्सा-सम्बन्धी उपदेश
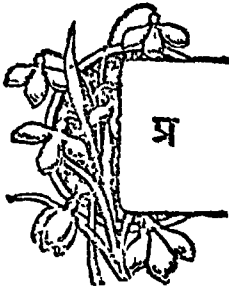
त्येक गृहस्थ को जिसके पास कि यह पुस्तक हो, उसे निम्नलिखित चिकित्सा-सम्बन्धी उपदेशों को पूर्ण रूप स्मरण रखना चाहिए :—

१—चिकित्सा में प्रथम इस बात के जानने की महान् आवश्यकता है कि कौन सा रोग है और कैसे उत्पन्न हुआ। रोग-ज्ञान के बिना औषधि का प्रयोग करना निष्फल ही नहीं, वरन् अनेक आपत्तियों का घर है। लिखा है—"रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्" इसलिए रोग-ज्ञान बहुत-कुछ गृहस्थ-चिकित्सा द्वारा करना आवश्यक है। इसमें प्रत्येक रोग की उत्पत्ति, लक्षण तथा व्यवस्था सामान्यतया वर्णन की गई है। इस पुस्तक के अनुसार औषधि-प्रयोग करने के समय उसमें लिखी हुई बातों का पूर्ण स्मरण करना आवश्यक है।

२—रोगी की प्रकृति, अवस्था, बल, काल आदि की भली भाँति विवेचना करने के अनन्तर औषधि की मात्रा निर्धारित करनी चाहिए। युवा पुरुष की औषधि-मात्रा की अपेक्षा बालक तथा वृद्धों की औषधि-मात्रा आधी होनी चाहिए; और छोटे बच्चों की मात्रा साधारण रूप से चौथाई होनी चाहिए, अर्थात् औषधि-

मात्रा की कल्पना में रोगी की अवस्था तथा वल आदि का पूर्ण विचार रखना चाहिए।

३—औषधि-प्रयोग करने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए और न एक साथ ही अनेक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए, अर्थात् किसी भी औषधि के व्यवहार में उसके फल के लिए यथोचित समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

४—प्रयोग-संग्रह चिकित्सा द्वारा यदि कुछ लाभ न ज्ञात हो और रोग कठिन मालूम पड़ता हो, तो चिकित्सा वन्द करके किसी योग्य चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए। ऐसे-वैसे अशिक्षित तथा अनभिज्ञ वैद्य या डॉक्टर की चिकित्सा की अपेक्षा इस पुस्तक तथा प्रकृति के ऊपर चिकित्सा को निर्भर करना सौ गुना अच्छा है। यही वात साधारण मनुष्यों की आविष्कृत पेटेन्ट औषधियों के विषय में भी समझनी चाहिए, उनसे लाभ के स्थान में उलटे हानि उठानी पड़ती है।

५—चिकित्सा में रोग का निदान (जिस कारण से रोग उत्पन्न हुआ हो) परित्याग कराना ही प्रथम चिकित्सा है। लिखा है :—

संक्षेपतः क्रियायोगो निदान परिवर्जनम्।

यह वात विशेपकर अजीर्ण, अम्लपित्त आदि याप्य व्याधियों में स्मरण रखने योग्य है। ऐसे रोग जब तक कि उनका निदान न छोड़ा जाय, आराम होने में नहीं आते। निदान का परित्याग न करने पर हजारों औपधियों के प्रयोग करने से भी कुछ लाभ नहीं

होता; क्योंकि निदान से रोग को पूरा बल मिलता रहता है, अतएव ऐसे रोग शान्त नहीं होने पाते।

६—मार्ग में यदि कोई आकस्मिक दैविक दुर्घटना हो जाय, तो उसमें धैर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। इस पुस्तक के अन्त में ऐसी दुर्घटनाओं की परीक्षित, प्रत्यक्ष फलप्रद कतिपय उत्कृष्ट चिकित्सा तथा प्रयोग और उपदेशों का आयुर्वेद तथा डॉक्टरी दोनों शास्त्रों के अनुसार वर्णन किया गया है। ऐसी दुर्घटनाओं में मन को स्थिर करके पुस्तक में वर्णित चिकित्सा-प्रयोग करने पर अत्यन्त लाभ होता है। जब तक कि योग्य चिकित्सक न मिले, तबतक लिखे हुए प्रयोगों के ऊपर ही सम्पूर्ण चिकित्सा निर्भर रखनी चाहिए। योग्य चिकित्सक मिलने पर उसी के उपदेशानुसार चलना चाहिए।

पथ्य-सम्बन्धी उपदेश

ह बात बिलकुल सत्य है कि "आधी चिकित्सा और आधा पथ्य।" चिकित्सा तभी सफल हो सकती है, जबकि रोगी का पथ्य-विधान ठीक किया जाय। पथ्य का प्रयोग ठीक न होने से औषधि कुछ भी गुण नहीं कर सकती। कहा है :—

(पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधि निषेवणैः ।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधि निषेवणैः ॥

अर्थात् कुपथ्य वाले को औषधि से क्या (कितनी ही दवा-दारू करो आराम न होगा); और पथ्य करने वाले को दवा से क्या (वह रोगी ही न होगा, अतः औषधि की आवश्यकता ही नहीं)।)

जो लोग पथ्य-सेवी हैं—नियम से खाते-पीते हैं, वे दीर्घायु होते हैं। उनकी तीनों अवस्थाएँ सुखपूर्वक व्यतीत होती हैं। बुढ़ापे में भी उनकी इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनी रहती हैं और उनका उत्साह भी वैसा ही रहता है; परन्तु जो खाने के लोभी, ज़बान के गुलाम और चटोरे होते हैं, उनकी जिन्दगी कराहते ही बीतती है। वे

कभी सुखी नहीं रहते और जवानी में ही बुढ़ापे का सुख भोग कर चल बसते हैं।

रोगी होना या मरना तो प्रायः प्रारब्ध का भोग है; पर पथ्य-सेवी तथा संयमी मनुष्य का छोटा-मोटा रोग पथ्य से ही आराम हो जाता है तथा असाध्य रोग साध्य बन जाता है। इसके सिवाय पथ्य-सेवी मनुष्य किसी पुराने रोग के होते हुए भी दीर्घजीवी हो सकता है। पथ्य के विषय में वैद्य की आज्ञा को औषधि से भी अधिक ध्यान से सुनना और पालन करना चाहिए; क्योंकि अन्न प्राण है और वायु उसी का सहायक है। यह प्राण (अन्न) यदि विष-रूप से शरीर में पहुँचे, तो समझना चाहिए कि औषधि भी विष-रूप हो गई।

भिन्न-भिन्न रोग पर भिन्न-भिन्न पथ्य-विधि हैं; परन्तु सब का साधारण मतलब यही है कि पथ्य लघु तथा शीघ्र पचने वाला और दोषों का शमन करने वाला हो। कोई विकार उत्पन्न न करे। रोगी चाहे जैसा हो, निर्बल हो ही जाता है। ऐसी दशा में पड़े-पड़े वह जैसा पथ्य पचा सके, वही पथ्य देना चाहिए।

बहुत से मनुष्य खाने-पीने की साधारण चीजों का भी ज्ञान नहीं रखते; और वे इस बात को भी नहीं जानते कि रोगी को कब और कैसा पथ्य देना चाहिए। दीर्घकाल तक पड़ा रहने वाला रोगी पथ्य की चीजें खाते-खाते ऊब जाता है; और उसे ११-१२ बजे तक भूख नहीं लगती। ऐसी दशा में यदि उसे कुछ लघु आहार न दिया जायगा, तो वह अधिक दुर्बल हो जायगा। कमज़ोर रोगी

को अधिकतर रात में कुछ ज्वर हो जाया करता है, इसलिए वह प्रातःकाल ज्वर उतरने पर अत्यन्त निस्तेज हो जाता है। ऐसी दशा में उसे प्रातःकाल लघु और सुपाच्य पथ्य अवश्य देना चाहिए। दूध, चाय और साबूदाने का पानी या अरारोट की काँजी देने के योग्य हैं। रोगी की रुचि के बिना तथा पाचन-शक्ति पर विचार किए बिना बार-बार जबरदस्ती रोगी को भोजन देना अनुचित है। प्रायः यह देखा गया है कि घरों में स्त्रियाँ रोगी के पथ्य तथा पानी के विषय में वैद्य की आज्ञा का उल्लङ्घन किया करती हैं। कुछ ऐसी चीजें लुक-छिप कर खिला देती हैं, जिन्हें वैद्य निषेध करता है। इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ करता।

अत्यन्त दुर्बल रोगी को ठीक समय पर पथ्य देना आवश्यक है, इसमें किञ्चितमात्र भी विलम्ब न होना चाहिए। पथ्य के समय या उससे पहले रोगी को कोई शारीरिक या मानसिक परिश्रम न करना चाहिए और भोजन करने के बाद उसे पूरा विश्राम मिलना चाहिए।

बहुधा देखा जाता है कि कितने ही रोगी उपवास से ही मर जाते हैं। पहले यह देखना चाहिए कि रोगी को भूख कब लगती है, फिर उस समय उसे कुछ भी थकावट न हो, इसका ध्यान रखना चाहिए। रोगी के खाने से बचे हुए भोजन को दुबारा खाने के लिए उसी के पास रखना अच्छा नहीं है; क्योंकि जो पदार्थ अरुचि के कारण ही छोड़ दिया गया है, उसके हर समय सामने ही पड़े रहने से रोगी की अरुचि बढ़ जाती है, अतः भोजन के पदार्थों

को सुन्दर स्वच्छ पात्रों में अलग रख देना चाहिए; और यह भी अरुचिकारक है कि रोगी को भूख के लिए बार-बार पूछा जायं। रोगी के सामने एकदम अधिक भोजन रखना और स्वस्थ मनुष्यों का भोजन दिखाना, हर समय खाने-पीने की बातें करना अनुचित है।

रोगी के पास बासी दूध, खट्टे पदार्थ, ठण्ढा या दुर्गन्धित अन्न न ले जाना चाहिए। रोगी का पथ्य-पदार्थ बिगड़ जाने पर दूसरा बनाना चाहिए। उसने क्या खाया और कितना खाया है, अब क्या देना चाहिए, इन बातों को अच्छी तरह विचारने की आवश्यकता है। भोजन का समय नियत करने पर रोगी को उसी समय भूख लग जाती है। ठीक समय भोजन के न मिलने से या रोगी को निराश कर देने से रोगी के मन में क्षोभ पैदा हो जाता है।

रोगी को क्या खिलाना चाहिए, यह बड़ा विकट प्रश्न है। इसका उत्तर बड़े-बड़े सुयोग्य चिकित्सक भी उत्तम रीति से नहीं दे सकते। बहुतों का विचार है कि मांस-रस पुष्टिकारक है; और बहुत कहते हैं कि मुर्गी के अण्डे अत्यन्त शक्तिवर्द्धक हैं; परन्तु ये चीजें विशेषकर पित्त प्रकृति वाले के लिए हानिकारक हैं। यदि रोगी पहले से ही मांसाहारी न हो, तो फिर कठिनाई की बात है, अतः अन्न ही रोगी का सर्वोत्तम पथ्य है। जो रोगी मांसाहार करते हैं, उन्हें रक्त-दोष पैदा हो जाता है। इसके सिवाय और भी विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं, अतः शाक-भाजी, फल-फलादि ही रोगी के लिए उत्तम हैं। अरारोट की काँजी शीघ्र हजम

हो जाती है ; परन्तु रोगी की पाचन-शक्ति यदि किञ्चित भी ठीक हो, तो उसके लिए दलिया देना चाहिए। यह पुष्टिकारक और हलका होता है।

पथ्य के सम्बन्ध में रोगी का बल, अवस्था तथा परिपाक-शक्ति को देख कर उसके लिए उपवास या आहार देना चाहिए। दुर्बल रोगी को उपवास कराने से प्राण-हानि की आशङ्का रहती है, क्योंकि लिखा है :—

प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत्।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः॥

यह आयुर्वेद का उपदेश है कि साधारणतया बालक, वृद्ध, गर्भिणी और दुर्बल रोगी को लङ्घन न कराया जाय। इसमें भी वृद्धों की अपेक्षा बच्चों में और बच्चों की अपेक्षा गर्भिणी में उपवास सहन करने की शक्ति कम होती है। वर्तमान समय में मनुष्य स्वभावतः अत्यन्त दुर्बल प्रकृति के होते हैं, इसलिए अधिक उपवास कराना हर समय प्रत्येक के लिए हानिकारक है। यदि पथ्य देना हैं, तो पहले बार्ली-ज़ल (जौ का पानी) और अन्न-मण्ड वा साबूदाना दिन-रात में तीन-चार बार देना चाहिए। ये चीज़ें सबसे अधिक लघु और सुपाच्य पथ्य हैं। कुछ गाढ़ी या दुग्ध-मिश्रित बार्ली, साबूदाना या अन्नमण्ड पूर्वापेक्षा भारी पथ्य हैं। दुर्बल रोगी के अग्नि बल को देख कर दिन-रात में आध सेर से सेर भर तक दूध देना चाहिए ; किन्तु प्रत्येक समय दूध को अन्नमण्ड या

बार्ली अथवा साबूदाने के साथ मिला कर देना चाहिए। यदि छोटी पीपल से पका हुआ दूध हो तो उसमें बार्ली आदि मिलाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

फलों के विषय में रोगी के लिए अङ्गूर, किशमिश, मुनक्का, सेव, अनन्नास, नारङ्गी, बीदाना आदि फल अच्छे समझने चाहिए। इनमें पहले के तीन फल पुष्टिकारक हैं; किन्तु दूसरों में पौषक-हेतु बहुत कम है। विशेषकर बीदाने में जल का भाग अधिक होता है। यदि इसे पुष्टि के लिए सेवन किया जाय, तो अधिक पुष्टिकारक नहीं हो सकता; किन्तु लोग भ्रमवश इसे पुष्टिकारक समझते हैं। खजूर, केला, लीची, नासपाती आदि फल यद्यपि पुष्टिकारक हैं, तथापि गुरुपाक होने के कारण इनका उपयोग साधारण रूप से ठीक नहीं है।

रोगी को अधिक गर्म मसालों वाला शाक तथा सरसों या खोपरे का तेल और घी खाना हानिकारक है। अम्लपित्त व अम्लशूल-रोग में तीक्ष्ण मसाले और तेल आदि न खाना चाहिए।

पथ्य बनाने की विधि
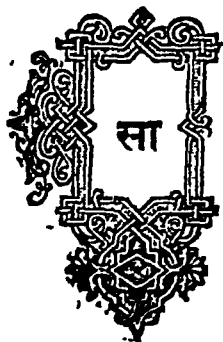
साबूदाना—आधा तोला या एक तोला उत्तम साबूदाना लेकर तीन पाव जल में दस मिनिट तक भिगोने के पश्चात् धीमी अग्नि से पका कर ठण्डा कर लेना चाहिए। साबूदाना अधिक गल जाने से प्रायः जल में मिल जाता है या जल-स्वरूप हो जाता है, इसलिए बहुत सावधानी से पकाना चाहिए; किन्तु स्मरण रहे कि अधिक गाढ़ा न होने पाए। यदि साबूदाने में दूध मिलाना हो, तो उसे कुछ गाढ़ा पका कर उतारने के पूर्व दूध मिला दे और उतार कर ही मीठा डालना चाहिए। मीठे के साथ साबूदाना न पकाना चाहिए। यदि सुगन्धित और रुचिकर करना हो, तो बड़ी इलायची व दालचीनी का थोड़ा सा चूर्ण मिला देना चाहिए। केवल जल में पके हुए साबूदाने में काग़ज़ी नीबू का रस मिलाना अच्छा है; किन्तु दूध के साबूदाने में नीबू का रस न मिलाना चाहिए। यह स्मरण रहे कि नीबू का रस किसी धातु के बर्तन में न मिलाया जाय; क्योंकि इससे कड़ुवा हो जाता है। साबूदाना बाज़ार में विशेष कर बिकता है, कभी-कभी यह नक़ली भी मिलता है, इसलिए असली विलायती साबूदाना काम में लाना चाहिए।

वार्ली—यह एक प्रकार का जौ का सत्व है। इसे अच्छा और नवीन लेना चाहिए। यदि वार्ली वनानी हो, तो आधा या एक तोला आटा लेकर तीन छटाँक ठण्ढे जल में भिगो कर फुला ले, तब तीन पाव जल को अग्नि पर ख़ूब गर्म करके खौलने पर यह बार्ली का गोला डाल दे; और तुरन्त नीचे उतार ले। धीरे-धीरे वह कुछ-कुछ लाल और साफ़ होता है। आवश्यकतानुसार इसे गाढ़ा व पतला वना सकते हैं। यदि उसमें चीनी व नीबू का रस आदि मिलाना हो, तो नीचे उतार कर ही मिलाना चाहिए। दूध की वार्ली वनाने में वार्ली को पकाकर उतारने के कुछ पहले दूध मिला देना चाहिए।

अरारोट—यह एक प्रकार के कन्द का सत्त है। इसके वनाने की विधि यह है कि एक तोला अरारोट को एक छटाँक ठण्ढे जल में घोल कर डेढ़ पाव खौलते हुए पानी को थोड़ा-थोड़ा उसके ऊपर छोड़ता जाय। अग्नि में पकाने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि कच्चे रहने का सन्देह हो, तो पहले उसे कुछ गर्म जल में मिलाकर एक वार अग्नि में पका कर उवाल ले। जब उसका रङ्ग काँच के सदृश स्वच्छ हो जाय, तो समझना चाहिए कि ठीक पक गया है। यदि गाढ़ा करना हो, तो धीमी आँच से पकाना चाहिए। चीनी, दूध या मिश्री खाते समय मिलानी चाहिए।

सावूदाना, वार्ली, अरारोट केवल जल से ही बने हुए हों, तो चार-पाँच घण्टे तक किसी स्वच्छ कपड़े में बाँध कर रखने से ख़राब नहीं होते; किन्तु दूध या मीठा मिलाकर रखना ठीक

नहीं है। अग्निमान्द्य, अतिसार आदि उदर-रोगों में अरारोट और वार्ली अच्छे पथ्य माने गए हैं।

अन्नमण्ड—दो तोले पुराने चावलों को तीन पाव या सेर भर जल में अच्छी तरह पकाकर गला लेना चाहिए। गलने के वाद ठण्डा करके चीनी या नमक मिलाकर रोगी को देना चाहिए। यह भी सावूदाना और वार्ली की तरह हलका सुपाच्य पथ्य है। पुराने ज़माने में सावूदाना तथा वार्ली का प्रचार नहीं था, इसलिए अन्नमण्ड को ही ज्वरादि रोगों में पथ्य-रूप से दिया करते थे।

यूष—मूँग, मसूर, अरहर और मोठ इनकी दाल का यूष वनाना हो, तो इन्हें अठारह गुने पानी में ख़ूव पकाना चाहिए। पकने के वाद सेंधा नमक, हल्दी, ज़ीरा, धनिया आदि मसाले वैद्य के आज्ञानुसार डाल कर रोगी को देना चाहिए।

लाजमण्ड—ताज़े तथा साफ़ धान के खीलों को गर्म जल में थोड़ी देर भिगोए। घुल जाने पर उसे कपड़े से छान कर पीना चाहिए। इसमें मिश्री या नमक डालना भी ठीक है।

मांसयूष—यदि रोगी को मांस सात्म्य है और वह वनाना हो तो ताज़ा चर्वी-रहित वकरी, भेड़ या मुर्ग़े का एक पाव मांस पानी से धोकर आध सेर ठण्ढे जल में आध घण्टे तक भिगोना चाहिए। वाद को थोड़ी पिसी हुई हल्दी, धनिया, दो लौंग और थोड़ी दालचीनी इनको जल में पीस कर पूर्वोक्त मांस वाले जल में मिलाकर, मन्द-मन्द अग्नि से वर्तन का मुख वन्द कर पका लेना चाहिए। जव क़रीव एक पाव जल रह जाय, तव उतार कर

कपड़े से छान ले। आवश्यकतानुसार सेंधानमक डालना चाहिए। अन्त में तेजपत्र, जीरा इन दोनों का घी से छौंक लगाना चाहिए। पश्चात् कुछ ठण्ढा होने पर काग़ज़ी नीबू का रस मिलाना चहिए।

छाना का जल—वङ्गाल में यह एक प्रकार का सुप्रसिद्ध सुपाच्य पथ्य है। इसके वनाने की विधि यह है कि एक मिट्टी के वर्तन में एक पाव दूध को खूब उवाले। उवलने पर लगभग दूध से आधा नीबू का रस मिला दे, इससे दूध फट जायगा। फिर कपड़े से छान ले। यह पीले रङ्ग का जल रोगी के लिए बहुत अच्छा पथ्य है। इसी को छाना का जल कहा जाता है। स्मरण रहे कि वासी होने से यह सड़ जाया करता है। पेट के दर्द, अजीर्ण, अग्नि-मान्द्य, प्रवाहिका आदि रोगों के होने पर छाना का जल देना अच्छा है। इसमें आवश्यकतानुसार चीनी या मिश्री भी मिला सकते हैं।

तर्पण—एक छटाँक किशमिश को दो सेर पानी में उवाले; आध सेर पानी वाक़ी रहने पर उतार ले, ठण्ढा होने पर इसमें चार तोले खीलों का चूर्ण और शहद या मिश्री मिलाकर सवको मथ करके तर्पण वना ले। यह तर्पण-प्रयोग आयुर्वेदोक्त पित्त-नाशक और कोष्ठ-शुद्धिकारक पथ्य है।

शाक—यदि रोगी को कोई शाक देने की आवश्यकता हो, तो तोरई, परवल, करेला, वथुआ, पेठा, आलू आदि का शाक अवस्था विशेष में वैद्य की सम्मति से देना चाहिए।

सूजी की रोटी—यदि शीघ्र पचने वाली रोटी बनाना हो, तो पहले सूजी को गूँद कर गोला सा बना ले। फिर खौलते हुए गर्म पानी में १५ मिनिट तक पका ले। बाद में इस पिण्ड को निकाल कर गर्म जल से अच्छी तरह गूँद कर हाथ से पतली-पतली रोटी बना कर सेंक ले। यह रोटी बहुत जल्दी हज़म होती है। सेंकने के लिए तवे की जगह कोरे घड़े का ठीकरा लेना चाहिए। रोटियों को सेंक कर ख़ूब फुलाना चाहिए। यदि आटे की रोटी बनानी हो, तो पहले आटा गूँद कर एक घण्टे तक पानी में भिगोकर रखना और सूजी की रोटी की तरह पकाना चाहिए।

दूध—यदि किसी पुराने रोग में दूध देने की आवश्यकता हो, तो "क्षीर-पाक-विधान" से देना चाहिए।

अधिकांश में छोटी पीपल का क्षीर-पाक होता है। उसकी विधि यह है—आध पाव गाय या बकरी का दूध ले, उसमें एक पाव पानी मिलाए और दो साबूत पीपलों की पोटली बना दूध में छोड़ कर लोहे की कड़ाही में इस तरह पकाए कि मलाई न पड़े। जब पानी जल जाय तो दूध को छान ले और मिश्री मिला कर रोगी को दे।
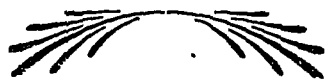
ज्वर
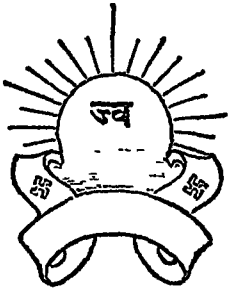
र दो प्रकार का होता है। पहला नवज्वर; दूसरा पुरातन या विषमज्वर। नवज्वर भी दो प्रकार का होता है। साधारण-नवज्वर और दूसरा कठिन सांक्रामिक या सान्निपातिक ज्वर। पुरातन-ज्वर अनेक प्रकार का होता है; किन्तु उनमें मलेरिया-ज्वर ही सबसे प्रधान ज्वर है। वर्त्तमान समय में मलेरिया-ज्वर आरम्भ में नवज्वर के समान लक्षण वाला दिखाई देता है। मलेरिया-ज्वर का विषय नवज्वर के अन्त में और पुरातन-ज्वर के आरम्भ में पृथक् रूप से वर्णन किया जायगा। इसके विषय में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि बहुतेरे स्थानों में मलेरिया-ज्वर के लक्षण दूसरे रोगों के समान दिखाई देते हैं, जैसे राजयक्ष्मा-ज्वर के लक्षणों के रूप में कभी-कभी मलेरिया-ज्वर उत्पन्न होता है। ऐसे स्थानों में प्रधान रोग ही की चिकित्सा करनी चाहिए।

यहाँ पर हमको प्रधान रूप से साधारण नवज्वर की ही चिकित्सा का वर्णन करना है। कठिन सान्निपातिक या वैकारिक ज्वर के सम्बन्ध में संक्षिप्त लक्षण एवं साधारण व्यवस्था (उपचार) मात्र ही इस छोटे से ग्रन्थ में कहा जायगा। कठिन सान्निपातिक

ज्वर की चिकित्सा किसी सुयोग्य वैद्य या डॉक्टर द्वारा करानी चाहिए।

साधारण नवज्वर—वात-प्रधान ज्वर में साधारणतः शरीर कम्प और वेदना, सूखी उलटी और उबकाई तथा कोष्ठ-बद्धता रहती है। कफ-प्रधान ज्वर में शरीर और शिर में भारीपन, प्रतिश्याय, खाँसी, ठण्ढ और अन्न से अत्यन्त अरुचि होती है। पित्त-प्रधान ज्वर में अत्यन्त तृषा, मुख-तालु-शोष और शरीर तथा आँखों में अत्यन्त जलन रहती है। द्वन्द्वज ज्वरों में दोषों के मिले हुए लक्षण रहते हैं। तीनों दोषों की अधिकता होने पर सान्निपातिक ज्वर होता है। ज्वर में तृषा, आरति (बेचैनी), शिर में दर्द, निद्रा-नाश आदि लक्षण साधारण रूप से रहते हैं। इसके सिवाय यदि ज्वर में दौर्बल्य, अतिसार, प्रलाप, श्वास आदि उपद्रव हों, तो उसे कठिन ज्वर समझ कर उचित उपाय करना चाहिए।

जिन स्थानों में मलेरिया-ज्वर का विशेष प्रकोप होता है और उन पुरुषों के, जिनके शरीर में मलेरिया-ज्वर का विष छिपा हुआ है, उनका नवज्वर प्रायः मलेरिया ज्वर का ही प्रकाशक समझना चाहिए, अर्थात् ऐसे पुरुषों का मलेरिया ज्वर नवज्वर के रूप को धारण करके उत्पन्न होता है। ऐसे स्थानों में प्रधान रूप से मलेरिया-ज्वर के प्रकरण में लिखे हुए उपदेश के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

इन्फ्लुएन्ज़ा, डेंग्युफ़ीवर (वातज्वर), रोमान्तिका (मीजल्स) तथा शीतला आदि सांक्रामिक ज्वरों की उत्पत्ति भी पहले-

पहल नवज्वर के सदृश ही प्रकट होती है। ऐसे सांक्रामिक ज्वरों में केवल निम्निलिखित वात, पित्त और कफ के विपरीत चिकित्सा के अनुसार उपाय करने से पूर्ण लाभ नहीं होता; किन्तु वातादि के प्रतिकूल चिकित्सा के साथ रोग के प्रतिकूल चिकित्सा की आवश्यकता है। इन सांक्रामिक ज्वरों की चिकित्सा-विधि आगे वर्णन की जायगी।

ज्वर में साधारण व्यवस्था—'ज्वरादौ लङ्घन प्रोक्तं' वचन के अनुसार साधारणतः सम्पूर्ण ज्वरों में पहले एक-दो दिन लङ्घन (उपवास) कराना बहुत अच्छा है; किन्तु यदि ज्वर की साधारण अवस्था हो और जिह्वा भी शुद्ध मालूम होती हो, तो हलका और थोड़ा आहार रोगी को देना चाहिए। एक-दो दिन के बाद जबकि कोष्ठ अच्छी तरह शुद्ध हो जाय, तब सावूदाना, वार्ली आदि हलके पथ्य देने चाहिए। जीभ की शुद्धि होने में और भूख के लगने में थोड़ा-थोड़ा पिप्पली से पका हुआ दूध देना अच्छा है। पिप्पली-क्षीर-पाक का विधान पहले ही पथ्य-प्रकरण में वर्णन किया गया है। लङ्घन के विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि गर्भिणी, बालक, वृद्ध, दुर्वल तथा वात-प्रकृति के मनुष्यों को लङ्घन किसी अवस्था में भी न कराया जाय। इसके सिवाय अत्यन्त परिश्रम, शोक, भय, क्रोध, ज्वर व वातज्वर, क्षयज्वर होने पर तथा पुरातन-ज्वर होने पर भी लङ्घन कराने का निषेध है; और अत्यन्त ग होने पर भी पूर्ण उपवास नहीं कराया जा सकता। बहुत से वैद्य लोग यह भूल करते हैं कि वे प्रत्येक ज्वर के रोगी को बहुत

लङ्घन करा डालते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि रोग और रोगी दोनों में कोई नहीं रहने पाता। ऐसी चिकित्सा युक्ति-विरुद्ध और शास्त्र-निषिद्ध समझनी चाहिए। अधिक लङ्घन कराना विशेष स्थानों (सन्निपात आदि) में शास्त्र के वचनानुसार युक्ति-सिद्ध हो सकता है, अर्थात् जहाँ पर शास्त्र अधिक लङ्घन कराने की व्यवस्था करता हो, वहीं पर इतने लङ्घन कराने की आवश्यकता है, तद्भिन्न स्थानों में नहीं। लङ्घन के विषय में, शास्त्र में स्पष्ट लिखा है :—

प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनन्सेपपादयेत् ।

बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥

अर्थात्—उपवास इतना कराना चाहिए जिससे बल की हानि न हो। आयुर्वेद शास्त्र में साधारणतः उपवास की अवधि अत्यन्त बलवान मनुष्य के लिए छः दिन की लिखी गई है। लिखा है:—

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् ।

भयङ्कर सन्निपात-ज्वर की सामावस्था में कहीं-कहीं दस, पन्द्रह, बीस दिन तक उपवास कराया जा सकता है। जैसे आन्तरिक ज्वर, मौक्तिक ज्वर आदि में दीर्घ उपवास की आवश्यकता होती है; परन्तु यह शास्त्र-मर्यादा उस समय की निर्धारित है, जबकि मनुष्यों में बल व दृढ़ता अधिक थी, इसीलिए आज-कल की औषधि-मात्रा की अपेक्षा पहले की औषधि-मात्रा भी दुगुनी या चौगुनी थी। यही हाल उनके उपवास के विषय

में भी हो सकता है कि वे बलवान् होने से दीर्घ लङ्घन को सहन कर सकते थे। वर्त्तमान समय में बलवान् रोगी के लिए चार-पाँच दिन का ही उपवास पर्याप्त है। साधारणतः एक-दो दिन का ही उपवास होना चाहिए। इस प्रकार के उपवास में प्रति दिन रोगी की बल-रक्षा के लिए तीन-चार बार थोड़ा-थोड़ा हलका (मुनक़्क़ा आदि) पथ्य देना आवश्यक है। अधिक लङ्घन के कारण बल क्षीण होने से कहीं-कहीं साधारण ज्वर में विकृत-ज्वर के सदृश लक्षण प्रकट हो जाते हैं। ऐसी दशा में रोगी की जीवन-रक्षा करना बहुत कठिन हो जाता है।

रोगी के लिए दूध देने में कुछ संशय हो, तो पिप्पली-सिद्ध अथवा शुण्ठी-सिद्ध (पीपल या सोंठ से पका हुआ) दूध देना चाहिए। एक पाव दूध, एक तोला सोंठ या अदरक और एक पाव जल तीनों को एक साथ पका कर केवल दूध बाक़ी रहने पर छान ले। यह शुण्ठी-सिद्ध दूध कहा जाता है; और यह ज्वर के रोगी के लिए अत्युत्तम पथ्य है। यदि शुद्ध व ताज़ा दूध न मिल सके, तो हॉरलिक्स मेल्टेड मिल्क (Horlick's Malted Milk) को गर्म जल में मिला कर देना चाहिए। मांसाहारी रोगियों के लिए दूध के सदृश पक्षियों के मांस का शोरुवा विशेष बलकर और सुपथ्य है। आवश्यकतानुसार दुग्ध या मांस-रस का व्यवहार कर सकते हैं; किन्तु यदि रोगी के लिए दूध व मांस-रस दोनों के देने की आवश्यकता हो, तो एक साथ न देकर दो-तीन घण्टे के बाद एक-दूसरे का प्रयोग करना चाहिए।

साधारणतः नवज्वर में मांस-रस आठ-दस दिन के बाद ही देना अच्छा है।

रोगी के लिए पथ्य का विधान अति शीघ्र व विलम्ब से करना उचित नहीं है। साधारणतः तीन-चार घण्टे के बाद पथ्य देना चाहिए। यदि भारी चीज़ का पथ्य हो, तो पाँच-छः घण्टे के बाद देना चाहिए। रोगी की अति दुर्बल अवस्था में दो-दो घण्टे के बाद थोड़ा-थोड़ा हलका-पतला पथ्य देना चाहिए। रोगी की अरुचि होने पर पतला तथा लघु पथ्य बार-बार देना चाहिए; और यह हर वक्त स्मरण रखना चाहिए कि रोगी को किस क़िस्म का पथ्य जल्द हज़म होता है।

साधारणतः कोष्ठ-शुद्धि तथा जिह्वा की शुद्धि की अवस्था में ज्वर के रोगी को दूध व साबूदाना, मूँग का यूष, खीलों का मण्ड आदि पथ्य देना चाहिए। पाँच-सात दिन के बाद थोड़ा-थोड़ा ज्वर होने पर और कोष्ठबद्ध तथा पेट में किसी क़िस्म की गड़बड़ी न होने पर साधारण रूप से आधा सेर से तीन पाव तक दूध थोड़ा-थोड़ा देते रहना चाहिए। पेट की गड़बड़ी में जल का साबूदाना, बार्ली, छाना का जल आदि देना चाहिए; किन्तु दूध न देना चाहिए। यदि देना भी हो तो बहुत थोड़ा दे। फलों के विषय में रोगी की परिपाक शक्ति को तथा बल-रक्षा की आवश्यकता को विशेष लक्ष्य करके उनका उपयोग करना चाहिए।

ज्वर शान्त होने पर और रोगी की जीभ, पेट, मल-मूत्रादि

के साफ़ होने तथा भूख के लगने पर उसको धान की खील, बताशा, भूभल में पके हुए आलू, थोड़ा भात का मण्ड या खीलों का माँड, परवल का रस और मांसाहारी होने पर भींगन मछलियों का रस और दूध आदि देना चाहिए। तदन्तर ज्वर के सर्वथा त्याग करने पर पुराने चावलों का अच्छी तरह पका हुआ भात, सूजी की रोटी या आटे में सोडा मिला कर बनाई हुई रोटी, मूँग की दाल, आलू, परवल तथा घी और छोटे-छोटे बैंगन आदि का थोड़े मसालों से बना हुआ शाक या मछली का मांस-रस देना चाहिए। यदि फल देना हो तो बीदाना, अनार, अङ्गूर, किशमिश और खजूर देना चाहिए। पेट की अशुद्धि में केवल बीदाना या अनार का रस देना अच्छा है। ज्वर के रोगी को ज्वर की अवस्था में पका हुआ जल ही अधिक देना चाहिए। यदि हो सके तो षडङ्ग-पानी बना कर प्यास लगने पर देना चाहिए। इसके बनाने की विधि यह है कि नागरमोथा, पित्तपापड़ा, ख़स, लाल चन्दन, नेत्र बाला और सोंठ इन औषधियों को समभाग लेकर कूट लें। उसमें से एक तोला द्रव्य लेकर एक सेर पानी में पकाए, जब आध सेर या तीन पाव पानी बाक़ी रह जाय, तब उतार कर छान ले। अवस्थानुसार रोगी को यह जल गर्म या ठण्ढा एक छटाँक के क़रीब पिलाना चाहिए। कफ-वायु की अधिकता में जल को अच्छी तरह पका कर कुछ गुनगुना ही देना चाहिए। पित्त की अधिकता में तथा अतिसार, भ्रम, दाह, मूर्च्छा आदि की अवस्था में अग्निपक्व जल को ठण्ढा ही देना अच्छा है। षडङ्ग-पानी या ख़ालिस जल

मिट्टी के पात्र में ही ढक्कन-रहित पकाना तथा उसी में रखना अच्छा है।

मलेरिया-ज्वर में जब ज्वर छूट जाय, तब उसके अनन्तर रोगी को बलकारक हलका आहार देना चाहिए। इस ज्वर में आवश्यकता होने पर एक-दो दिन के सिवाय उपवास कराना हानिकारक है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण में लिखा जायगा।

कोष्ठ-शुद्धि न होने पर रोगी को एक-दो दिन के बाद मृदु विरेचन देना चाहिए; और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विरेचन तेज तथा कई बार के ज्वर-रोगी के लिए न दिया जाय। यदि अत्यन्त विरेचन देने की आवश्यकता हो, तो पाँच-छः दिन के बाद दुबारा दिया जा सकता है।

विरेचन के लिए पञ्चसकार चूर्ण—सोंठ, सौंफ, सनाय, सेंधा-नमक, शिवा (हरड़) समभाग गर्म जल के साथ खिलाना चाहिए। अथवा शुद्ध एरण्ड का तेल (कास्ट्रॉइल), २ तोला गर्म जल या दूध के साथ अथवा निशोथ का चूर्ण मिश्री मिला कर दूध या गर्म जल के साथ या गुलकन्द को गर्म जल या दूध के साथ देना चाहिए।

नवज्वर में पहले पाँच-छः दिन तक पाचन-औषधि न देना अच्छा है; किन्तु किसी विशेष औषधि को न देकर, पहले एक-दो लंघन कराना चाहिए। बाद में लघु पथ्य आदि का विधान करने से साधारण ज्वर प्रायः अच्छा हो जाता है।

नवज्वर के विषय में लिखा है कि जब तक ज्वर के दोष साम

(अपरिपक्व) रहते हैं या जब तक सामज्वर रहता है, तब तक उसमें किसी क़िस्म की औषधि या पथ्य देना अत्यन्त हानिकारक है। लिखा है:—

भेषजं ह्यामदोषस्य भूयोज्वलयति ज्वरम्

धीरे-धीरे उपवास या उष्ण जल-पान करने से आम के परिपक्व होने तथा आमज्वर के लक्षणों के अभाव होने पर ज्वर निराम कहा जाता है। ऐसी अवस्था में पाचन-औषधि और सुपाच्य लघु पथ्य देना हानिकारक नहीं है। यदि ज्वर में कुछ आम-लक्षण मौजूद हों, तो उसमें अत्यन्त पतले (जल का साबूदाना, जल बार्ली आदि) लघु पथ्य विशेष अवस्था में देने चाहिए। आगे जो ज्वर में पाचन औषधियाँ लिखी हुई हैं, उनको ज्वर के दिन से पाँच-छः दिन के बाद प्रयोग में लाना चाहिए। पाचन के सिवाय और भी किसी क़िस्म की औषधि पाँच-छः दिन के अन्दर न देनी चाहिए।

औषधि-प्रयोग (१) विबन्ध की दशा में एक तोला अमलतास का गूदा गर्म दूध के साथ खिलाना चाहिए।

(२) हरड़ छोटी, किशमिश, सोंठ, फूलगुलाब और सनाय इन औषधियों को समभाग कूट कर इसमें से दो तोला आध सेर जल में पकाए। छटाँक भर बाक़ी रहने पर छान कर पिला दे।

(३) दो या ढाई तोला एरण्ड का तेल व आधा तोला अदरक

का रस, आधी छटाँक गर्म दूध या गर्म जल के साथ मिला कर पिलाना चाहिए।

(४) निशोथ की जड़ का चूर्ण तीन माशा, पिप्पली-चूर्ण डेढ़ माशा, छोटी हरड़ का चूर्ण डेढ़ माशा इन तीनों के बराबर चीनी मिला कर गर्म जल के साथ खिलाना चाहिए।

(५) मधुर-विरेचनी वटियों की दो गोली ठण्ढे जलके साथ देना अत्युत्तम है। इन गोलियों में किसी तरह की विकृत्ति का डर नहीं है।

तृषा—(१) सफ़ेद चन्दन को आधा तोला घिस कर आधसेर जल में मिला कर थोड़ा-थोड़ा पिलाना चाहिए।

(२) काग़ज़ी नीबू का थोड़ा सा रस जल में मिला कर और बूरा डाल कर पिलाना चाहिए।

(३) रोगी के मुख में आलू-बुख़ारा चूसने के लिए देना भी अच्छा है। यदि इन उपायों से तृषा न शान्त हो, तो पूर्वोक्त षडङ्ग-पानी थोड़ा-थोड़ा पिलाना चाहिए; क्योंकि यह जल ज्वरतृषा-नाशक और तरावट पैदा करने वाला है। यदि ज्वर की पाचन औषधि देने की अवस्था न हो, तो इसी को सर्वथा दे सकते हैं। यह एक प्रकार का सर्वज्वर-नाशक (Fever Mixture) है। साधारणतः गर्म जल को ठण्ढा करके पिलाना ही प्रसिद्ध है। कफ़-ज्वर के सिवाय अन्य सभी ज्वरों में गर्मी की अधिकता होने पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में चूसने के लिए बर्फ़ देना चाहिए।

दाह—(१) धनिया एक तोला आध सेर ठण्ढे जल में रात्रि

को भिगो देना चाहिए, प्रातःकाल उसे मसल-छान कर, दो तोला चीनी या मिश्री मिला कर थोड़ा-थोड़ा पिलाना चाहिए।

(२) ढाक के हरे पत्ते और काँजी को बारीक पीस कर मस्तक और तालु में लेप करना चाहिए।

(३) रोगी को सीधा सुलाकर उसकी नाभि के ऊपर काँसे का एक बर्तन (थाली या कटोरा) रख कर उसमें बर्फ या ठण्ढे जल की धार डालनी चाहिए जो कि रोगी के शरीर पर न गिरे। इस उपाय से भी दाह अति शीघ्र ही शान्त हो जाती है।

शिर-पीड़ा—(१) जल के साथ केवल दालचीनी को चन्दन की तरह घिस कर या कुछ मक्खन मिला कर मस्तक पर लेप करना चाहिए।

(२) लाल चन्दन को घिस कर उसमें कुछ कपूर मिलाकर शिर पर लेप करे।

(३) मैन्थल, पीपरमेण्ट या कपूर को घी में मिला कर शिर में प्रलेप करने से बहुत लाभ होता है।

(४) लाल कनेर के फूल और आँवला इन दोनों को काँजी में पीस कर कुछ गुनगुना लेप करने से शिर-पीड़ा शान्त होती है।

(५) अत्यन्त दारुण शिर-पीड़ा में प्रलाप आदि होने पर या ज्वर की गर्मी अधिक (१०४ से १०५ डिग्री तक) होनें पर एक रबड़ की थैली में बर्फ भर कर सिर पर रखने से तुरन्त उपकार होता है; किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि शिर

पर जल न रुकने पाए। यह बर्फ़ रखने का विधान वात-पित्त-कफ-ज्वर में करना चाहिए; किन्तु श्लेष्माधिक ज्वर में मस्तक पर बर्फ़ रखना अच्छा नहीं है।

कम्प-ज्वर—कम्प शान्त करने के लिए चार-पाँच काली मिर्च या सफ़ेद मिर्च चबा कर गर्म जल पीने से तत्काल ही लाभ होता है; और गर्म जल से रबड़ की थैली को भर कर हाथ, पैर और कमर में स्वेद देने से भी कम्प दूर हो जाता है।

वमन—(१) एक काग़ज़ी नीबू का टुकड़ा चूसने के लिए देना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा करके गर्म जल पिलाना चाहिए।

(२) बड़ी इलायची का चूर्ण और तरबूज़ के बीज प्रत्येक चार रत्ती पीस कर शहद के साथ चटाने से उलटी बन्द हो जाती है।

(३) प्रायः मलेरिया-ज्वर व साधारण पित्त-ज्वर में वमन होता है। यदि विशेष वमन न हो, तो उसे बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। सोडा व लेमनेड बर्फ़ के साथ थोड़ा-थोड़ा पिलाने से उलटी बन्द हो जाती है। इसके सिवाय छर्दि की चिकित्सा के प्रकरण में लिखी हुई औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

भोजन करने के कुछ ही देर बाद ज्वर होने पर अथवा विशेष उबकाई आने पर अधिक प्रमाण में गर्म जल पिलाना या नमक मिला गर्म जल पिला कर गले में उँगली डाल कर वमन करा देना चाहिए। लिखा है:—

कफ प्रधानानुत्क्लिष्टा कोपानामाशयोत्थितान् ।
बुद्ध्वा ज्वर करान काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥

शीत—लौंग, मिश्री, मुलहटी और दालचीनी प्रत्येक एक-एक माशा लेकर इन सब को चाय की तरह जल में पका कर देना चाहिए। यह जल दो या तीन घण्टे के बाद आध पाव या तीन छटाँक पीने से शीत बन्द हो जाता है।

ज्वर-वेग—अतीस का चूर्ण दो रत्ती, नीम की छाल तीन रत्ती और मकरध्वज या रस सिन्दूर आधी रत्ती, शुद्ध और साफ़ शोरा दो रत्ती सबको मिला कर शहद के साथ तीन-चार घण्टे के अन्तर से देना चाहिए। ज्वर-वेग कम होने पर इन औषधियों को न खाना चाहिए।

गात्र-वेदना—रेत को खूब गर्म करके पोटली द्वारा सर्वाङ्ग या जिस स्थान में पीड़ा होती हो सेंक देना चाहिए। फ़लालैन के कपड़े को गर्म करके सेंक देने से भी शीघ्र लाभ होता है।

इस प्रकार नवज्वर में पहले चार-पाँच दिन तक साधारण उपचार के सिवाय विशेष पाचन आदि औषधि न देनी चाहिए। इस बात को पहले भी वर्णन किया गया है कि ज्वर की आमावस्था में किसी क़िस्म की, षडङ्ग पानी आदि विधान को छोड़ कर, पाचन आदि औषधि न देनी चाहिए।

सामज्वर—जब ज्वर अजीर्ण के कारण होता है, तब

साधारणतः रोगी की जीभ मैली, मुख में तेज़ी, उबकाई, तन्द्रा, अरुचि, पेट भारी व आध्मान (अफरा) शरीर में जकड़ाहट, मुख में वैरस्य और अत्यन्त तेज ज्वर होता है।

इन लक्षणों के शान्त हो जाने पर नीरामज्वर हो जाता है। तभी पाचन आदि औषधि और लघुपथ्य देना चाहिए। यदि नवज्वर में दस्त साफ़ कराने की आवश्यकता हो, तो निम्नलिखित पाचन-प्रयोग देना चाहिए। यदि चार-पाँच दिन के बाद ज्वर शान्त न हो, तो ज्वर की अवस्था को देख कर निम्नलिखित पाचन-संग्रह से किसी एक का प्रयोग करना चाहिए :—

साधारण ज्वर में पाचन—धनिया और पटोल-पत्र प्रत्येक एक-एक तोला कूट कर जल में पकावें, आध पाव पानी बाक़ी रहने पर छान कर प्रत्येक दिन दो बार सायं-प्रातः देना चाहिए। यह पाचन ज्वर में किसी विशेष उपद्रव के न होने पर यथेष्ट उपकार करता है; क्योंकि यह ज्वर-नाशक, अग्नि-दीपक और कोष्ठ-शुद्धिकारक पाचन है।

वातिक ज्वर में पाचन—(१) चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, छोटी व बड़ी कटेरी, गोखरू, शालपर्णी, नेत्रवाला और सोंठ इन औषधियों को समभाग में दो-दो तोला लेकर क्वाथ-विधान से पका कर प्रति दिन दो बार सेवन करना चाहिए। इस पाचन से गात्र-वेदना शान्त और दस्त-साफ़ होते हैं तथा भूख भी खूब लगती है। इसको किरातादि क्वाथ कहते हैं।

(२) बृहत्पञ्चमूल क्वाथ—बेल, अरलू, गाँभारी, पाढ़ल, अरनी प्रत्येक की जड़ की छाल दो-दो तोला लेकर क्वाथ की रीति से पका कर पाचन के निमित्त प्रति दिन दो बार पीना चाहिए। यह आम-दोष और शरीर-वेदना को नष्ट करने वाला है, तथा ज्वर-नाशक और अग्नि-दीप्तिकारक है। यदि शरीर में पीड़ा अधिक हो, तो लघुपञ्चमूल की शालपर्णी, पृष्टिपर्णी, दोनों कटेरी और गोखरू इन पाँचों औषधियों को पूर्वोक्त औषधियों में मिला कर क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिए। इन दश औषधियों का नाम दशमूल है। इसका पाचन अत्यन्त उपकारक है।

(३) पिप्पली मूल, गिलोय, सोंठ तीनों को मिलाकर दो तोला लेकर पाचन-क्वाथ बना कर पीना चाहिए। यह आम-दोष व वात-ज्वर की उदर-पीड़ा में विशेष उपकारी है।

पित्त-ज्वर में पाचन—(१) इन्द्रजौ, कायफल, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, कुटकी इन औषधियों का क्वाथ बनाकर उसमें छः माशा चीनी मिला कर पीने से कोष्ठ-शुद्धि तथा पैत्तिक ज्वर नष्ट होता है।

(२) पटोलपत्र और छँटे हुए जौ प्रत्येक एक-एक तोला लेकर इनका क्वाथ बनावे। शीतल होने पर शहद मिला कर पिलाने से भयङ्कर पित्त-ज्वर, तृष्णा तथा दाह शान्त होते हैं।

(३) पित्तपापड़ा, लाल चन्दन, नेत्रबाला और सोंठ इनका क्वाथ बना कर सेवन करने से शीघ्र ही अत्यन्त दाह तथा

तृष्णायुक्त पित्त-ज्वर शान्त होता है। अथवा केवल पित्तपापड़ा दो तोला लेकर क्वाथ बनाकर पिलाने से भी पित्त-ज्वर में विशेष लाभ होता है। लिखा भी है :—

एकऽपर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥

कफ-ज्वर में पाचन—(१) नीम की छाल, सोंठ, गिलोय, कचूर, चिरायता, देवदारु, कुड़ा की छाल, गजपीपल, पीपल और बड़ी कटेरी सबको दो-दो तोला लेकर इनका क्वाथ पीने से कफ-ज्वर नष्ट होता है। इस क्वाथ को निम्बादि क्वाथ भी कहते हैं।

(२) कुटकी, चित्रकछाल, हल्दी, नीम की छाल, वच, अतीस इन औषधियों का क्वाथ बना कर इसमें तीन माशा काली मिर्च और छः माशा शहद मिला कर पिलाने से कफ-ज्वर में कोष्ठ-शुद्धि के साथ ज्वरकारक दोष नष्ट हो जाते हैं।

(३) सोंठ छः माशा, पीपल छः माशा और सँभालू के पत्ते इनका विधिपूर्वक पाचन-क्वाथ बनाने से आमयुक्त कफ-ज्वर में विशेष लाभ होता है।

(४) पिप्पली चूर्ण और शहद प्रत्येक छः-छः माशा मिलाकर थोड़ा-थोड़ा चाटने से प्रतिश्याय तथा कासयुक्त ज्वर में विशेष लाभ होता है।

वात-पैत्तिक ज्वर में—(१) सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, शालपर्णी, पृष्टिपर्णी और दोनों कटेरी इन सब

औषधियों को समभाग मिला कर दो तोला प्रमाण में क्वाथ बना कर पीने से अत्यन्त उपकार होता है। इसको नवाङ्ग क्वाथ कहते हैं।

(२) नागरमोथा, लालचन्दन, पित्तपापड़ा, कुटकी, खस, पटोलपत्र और नेत्रवाला इन औषधियों को समभाग मिलाकर दो तोला विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर ठण्डा होने पर छः माशा चीनी मिला कर पिलाने से ज्वर, वमन, तृष्णा, अरुचि और दाह शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

पित्त-कफ-ज्वर में—गिलोय, इन्द्रजौ, नीम की छाल, पटोलपत्र, कुटकी, सोंठ, लाल चन्दन और नागरमोथा इन औषधियों का विधिपूर्वक पाचन क्वाथ बनाकर पिलाने से अरुचि, उबकाई, प्यास, दाह, गात्र-वेदना और कोष्ठ-बद्धता आदि शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। इसको अमृताष्टक कहते हैं।

वात-कफ ज्वर में—(१) पीपल, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रकछाल और सोंठ इन पाँच औषधियों का पाचन-क्वाथ पिलाने से कफ की शान्ति, अग्नि-दीप्ति और शरीर की जकड़ाहट में विशेष लाभ होता है। इसको पञ्चकोल क्वाथ कहते हैं।

(२) यदि कोष्ठ-बद्धता (मल बँधा हुआ) हो, तो अमलतास का गूदा, कुटकी और हरड़ को दो-दो तोला लेकर क्वाथ बनाकर पीने से अग्निदीप्ति, आम-दोषों का पाचन होकर ज्वर शान्त हो जाता है। यह याद रखना चाहिए कि यह पाचन

दस्तावर होने के कारण वार-बार प्रयोग में न लाया जाय। इस पूर्वोक्त विधान द्वारा साधारण नवज्वर में चिकित्सा करने से छः-सात दिन में ही ज्वर शान्त हो जाता है। छः-सात दिन के बाद यदि ज्वर विशेष हो और आम-दोप न हो, तो पूर्व-कथनानुसार पिप्पली-सिद्ध दूध पिलाना चाहिए और ज्वर के पाचन के निमित्त विचार-पूर्वक औपधि-प्रयोग करना चाहिए। ज्वर में प्रलाप, अतिसार, अनिद्रा आदि लक्षणों केअधिक होने पर किसी सिद्ध-हस्त सुयोग्य वैद्य द्वारा चिकित्सा करानी चाहिए।

कठिन सान्निपातिक व संक्रामक ज्वर—सान्निपातिक और संक्रामक ज्वर अनेक प्रकार के होते हैं। चरक ने सन्निपात के तेरह भेद लिखे हैं तथा अन्यान्य ग्रन्थों में बावन प्रकार का सन्निपात लिखा है; परन्तु उनका वर्णन व चिकित्सा इस छोटे से ग्रन्थ में नहीं आ सकती, इसलिए साधारण सान्नि-पातिक ज्वर की ही इसमें संक्षित वर्णन के साथ चिकित्सा बताई जाती है। अनेक वार ऐसा होता है कि पूर्वोक्त ज्वरों के पहले-पहल लक्षणादि साफ़ प्रकट नहीं होते; और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि साधारण नवज्वर में चिकित्सा की ख़रावी से सान्निपातिक ज्वर उत्पन्न हो जाता है। ऐसे सान्निपातिक ज्वरों के लक्षणादि अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें से बहुत स्थानों में पहले अधिक शिर-पीड़ा, प्रवल ज्वर, आध्मान, जीभ मैली और अत्यन्त दुर्वलता आदि उपद्रव के रूप में पैदा होते है; परन्तु

प्रलाप, अतिसार, अत्यन्त कोष्ठबद्ध, ज्वर की दिन प्रतिदिन वृद्धि, नाड़ी अत्यन्त कमजोर तथा श्वास आदि लक्षणों के होने पर निश्चय करना चाहिए कि यह कोई दुःसाध्य सान्निपातिक ज्वर है। इन सन्निपात के लक्षणों में से एक दो लक्षणों को देखने से ही सन्निपात न समझना चाहिए। कठिन सन्निपात-ज्वर की चिकित्सा अपने आप न करनी चाहिए; बल्कि किसी योग्य चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए। यदि सुयोग्य चिकित्सक न मिले और दोष अजीर्ण तथा भयङ्कर हो, तो सान्निपातिक व संक्रामक ज्वर में रोगी की बल-रक्षा के निमित्त आवश्यकतानुसार (पिप्पलीसिद्ध) पीपल से पका हुआ दूध मात्रानुसार पिलाना चाहिए, जिससे रोगी अकारण लङ्घन में दुर्बल न हो जाय। किन्तु यह स्मरण रहे कि सन्निपात में अतिसार होने पर साबूदाना, जल की बार्ली और छाना का जल आदि के सिवाय दूध न पिलाना चाहिए। अधिक दुर्बलता में अरारोट मिला कर बकरी का दूध पिलाना चाहिए। यदि दूध जीर्ण न होता हो, तो प्रति दिन आध सेर तक छाना का जल पिलाना चाहिए। यह ज्वरातिसार में उत्तम पथ्य है।

कई बार ऐसा होता है कि केवल विधिपूर्वक पथ्य-सेवन द्वारा रोगी की बल-रक्षा करते हुए किसी विशेष औषधि को न देने पर भी अनेक प्रकार के सन्निपात-ज्वरों की शान्ति तथा प्रतिकार हो जाता है। यदि सन्निपात-ज्वर में पाचन देने की आवश्यकता हो, तो निम्नलिखित पाचन-प्रयोग करने चहिए।

(१) कचूर, कुड़ा-छाल, बड़ी कटेरी, काकड़ासींगी, जवासा, गिलोय, सोंठ, पाढ़, चिरायता, कुटकी इन सबको दो-दो तोला लेकर आध सेर जल में पकाकर, आध पाव बाक़ी रहने पर प्रति दिन दो बार पिलाने से खाँसी, पार्श्वशूल और श्वास तथा तन्द्रायुक्त सन्निपातज्वर शान्त होता है। इसको शठ्यादि क्वाथ कहते हैं।

(२) चिरायता, देवदारु, पूर्व-लिखित दशमूल, सोंठ, नागर-मोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनिया और गजपीपल इन सबको दो तोला लेकर क्वाथ-विधान से पका कर तन्द्रा, मोह, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह, श्वासयुक्त सन्निपात ज्वर में प्रति दिन दो बार प्रयोग करना चाहिए। इसको अष्टादशाङ्ग क्वाथ कहते हैं।

यहाँ पर यह कहने की आवश्यकता है कि जो प्लेग, निमोनिया, इन्फ्लुएन्ज़ा आदि कठिन संक्रामक रोग होते हैं, वे पहले एक प्रकार के विषैले कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं; तत्पश्चात् उनमें सन्निपात-ज्वर के लक्षण प्रकट हो जाते हैं, इसलिए इनकी चिकित्सा सान्निपातिक ज्वर की तरह करनी चाहिए। वर्त्तमान समय में अनेक प्रकार के सांक्रामिक ज्वर; जैसे—आन्त्रिक, ग्रान्थिक, श्लेष्मक, सान्धिक, श्वसनक, आक्षेपक ज्वर दिखाई देते हैं, उनके विशेष विस्तारयुक्त लक्षणों को तत्तद् ग्रन्थों (सिद्धान्त निदान) में देखना चाहिए। इस छोटे से ग्रन्थ में उनका अति संक्षिप्त लक्षण लिखा जाता है।

आन्त्रिक ज्वर—इसको अङ्गरेज़ी में टाईफ़ाइड फ़ीवर कहते हैं।

इसमें पहले पाँच-सात दिन सिर में भयङ्कर पीड़ा और कोष्ठबद्ध रहता है। ज्वर धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। बहुत सी जगह छः दिन के बाद आठ-दस दिन पर्यन्त साफ़ और पीले रङ्ग के दस्त होते हैं; और पेट अफर जाता है। कहीं-कहीं केवल कोष्ठबद्धता ही रहती है। दूसरे और तीसरे सप्ताह में ज्वर की उत्तरोत्तर वृद्धि, कास, प्रलाप, तृष्णा, मोह आदि उपस्थित रहते हैं। तृतीय सप्ताह के अन्तर ज्वर धीरे-धीरे घटने लगता है और प्रायः अठाईस दिन में बिलकुल छूट जाता है। इस रोग की चिकित्सा किसी विशेष अनुभवी वैद्य द्वारा करानी चाहिए; क्योंकि इस रोग में आँतों के अन्दर घाव हो जाते हैं, इसलिए अधिक औषधि न देनी चाहिए। पथ्य के लिए दूध या छाना-जल, बार्ली, जल साबूदाना देना अच्छा है। रोगी की बल-रक्षा का पूर्ण ध्यान रखते हुए इसकी समयावधि की प्रतीक्षा करना ही प्रधान चिकित्सा है।

श्लेष्मज्वर—इसको अङ्गरेजी में इन्फ्लुएन्ज़ा कहते हैं। इसमें अकस्मात् प्रतिश्याय, कफ-कास, सिर और शरीर में पीड़ा तथा अत्यन्त अवसाद (दुख) के साथ ज्वर होता है। कहीं-कहीं ज्वर के पहले शीत और शरीर-कम्प होता है। इस ज्वर में दो ही चार दिन में शरीर अत्यन्त कृश और दुर्बल हो जाता है। कफ की अधिकता होने से तथा उपचार की ख़राबी से श्वसनक सन्निपात-ज्वर के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इस रोग में कहीं-कहीं अतिसार व उलटी होती है; और अन्त में शरीर पीला होकर कामला-रोग उत्पन्न हो जाता है। इसकी चिकित्सा प्रायः वात, श्लेष्माधिक, सन्निपात-ज्वर

के समान करनी चाहिए। रोगी को विशेप रूप से विछौने से उठने न देना चाहिए और पिप्पली-सिद्ध दूध, लाजमण्ड, साबूदाना आदि पथ्य देकर वल-रक्षा करनी चाहिए। आयुर्वेदोक्त "लक्ष्मी विलास रस" का प्रयोग दिन में दो-तीन बार शहद और अदरक के रस के साथ करना चहिए।

श्वसनकज्वर—इसको अङ्गरेज़ी में निमोनिया कहते हैं। इसमें पार्श्वशूल, ज्वर, कास और धीरे-धीरे श्वास-वृद्धि होती है। श्वास लेते समय नथने फूल जाते हैं और कफ के साथ प्रायः रक्त निकलता है। प्रवल ज्वर, मस्तक व शरीर में थोड़ा-थोड़ा पसीना, दुर्वलता, मोह, प्रलाप आदि लक्षण शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। साधारणतः यह ज्वर सातवें, आठवें या नवें दिन अकस्मात् ही शरीर से उत्पन्न पसीने के साथ उतर जाता है; ऐसी अवस्था में रोगी के मर जाने की अत्यन्त आशङ्का रहती है। यदि ज्वर धीरे-धीरे उतरता है, तो यह अवस्था रोगी के आरोग्य होने की समझी जाती है।

इस रोग में रोगी की वल-रक्षा के साथ सावधान रूप से चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें सान्निपातिक ज्वर का पाचन और अभ्रक सहित चन्द्रोदय, मकरध्वज या स्वर्ण-सिन्दूर का प्रयोग विशेषरूप से लाभकारी होता है। छाती में दर्द होने पर रोगी की छाती को गर्म कपड़े या रूई से हर समय लपेटे रहना चाहिए और शुद्ध वायु के निमित्त घर के दरवाज़े तथा खिड़कियाँ हर वक्त खुली रहनी चाहिए; क्योंकि दूपित वायु के कारण फेफड़ों में

विकृति हो जाती है; अतः उनके लिए शुद्ध वायु की अत्यन्त आवश्यकता है। .

दण्डकज्वर—इसको अङ्गरेज़ी में डैंग्यू फ़ीवर कहते हैं। इस रोग में एकाएक शरीर की हड्डियों की सन्धियों में असह्य वेदना के साथ जकड़ाहट हो जाती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि शरीर तथा कमर की कोई हड्डी टूट गई है। साथ ही इसके प्रायः प्रतिश्याय, कास और ज्वर भी होता है। कहीं इस रोग में शरीर के ऊपर एक प्रकार के लाल रङ्ग के(मण्डल) दाग़ दिखाई देने लगते हैं, जोकि दो-तीन दिन बाद स्वयं शान्त हो जाते हैं। इस रोग में साधारणतः आठ-दस दिन में आराम हो जाता है। चिकित्सा के विषय में पाचन के निमित्त पूर्वोक्त पञ्चकोल तथा दशमूल का क्वाथ विशेष लाभकारी है। रोगी की सन्धियों में बालू (रेत) का स्वेद देना और कोष्ठ-शुद्धि की तरफ़ विशेष ध्यान रखना चाहिए।

कर्णमूलिकज्वर—इसे अङ्गरेज़ी भाषा में मम्पस कहते हैं। इस रोग में पहले एक तरफ़ फिर शीघ्र ही दूसरी तरफ़ कान की जड़ में शोथ उत्पन्न होता है और पाँच-छः दिन तक अत्यन्त वेगयुक्त ज्वर होता है। बाद में वह धीरे-धीरे कम पड़ जाता है। आख़िर में प्रायः अण्डकोषों में तीव्र वेदनायुक्त शोथ भी हो जाता है, जो प्रायः आठ-दस दिन में शान्त हो जाता है। इस रोग की चिकित्सा वातश्लेष्मिकज्वर के सदृश करनी चाहिए। शोथ के ऊपर धतूरे के पत्तों का रस और समुद्रफेन मिला गर्म करके लेप करना और कोष्ठ-शुद्धि के लिए विशेष ध्यान रखना चाहिए।

मसूरिकाज्वर—यहाँ पर पूर्वोक्त संक्रामक ज्वरों के अनन्तर मसूरिका-ज्वर का भी कुछ वर्णन करना आवश्यक है; क्योंकि यह ज्वर भी अत्यन्त संक्रामक होता है। आयुर्वेद में मसूरिकारोग को वसन्तरोग कहते हैं। इसके भेद आयुर्वेद में अनेक प्रकार के लिखे हुए हैं; किन्तु उनमें से यहाँ पर तीन मुख्य भेदों का वर्णन किया जाता है—(१) बृहन्मसूरिका (Small pox); (२) लघुमसूरिका (Chicken-pox); (३) रोमान्तिका (मीजला)॥

बृहन्मसूरिका—इस रोग में साधारणतः शीत, कम्प, शिरपीड़ायुक्त ज्वर और कमर व पीठ में अत्यन्त-वेदना होती है। अनेक समय पहले दो-तीन दिन तक बुखार के साथ प्रलाप और मोह होता है। साधारणतः तीसरे व चौथे दिन शरीर में जगह-जगह कुछ ऊँची छोटी-छोटी पिडिकियाँ उत्पन्न होती हैं और ज्वर घटने लगता है। दो-तीन दिन में सम्पूर्ण शरीर में ये पिडिकियाँ निकल आती हैं। ये पिडिकियाँ साधारणतः छठे और आठवें दिन के बीच में पहले जल भरी हुई, बाद को पीव से भर जाती हैं। इसके अनन्तर चार-पाँच दिन और कहीं-कहीं आठ-दस दिन के बाद पिडिकियाँ धीरे-धीरे सूखने लगती हैं; परन्तु किसी-किसी रोगी को पिडिकियाँ तो तीन-चार सप्ताह में सूखती हैं और उनके दाग़ प्रायः चिरस्थायी हो जाते हैं। इस रोग में मुख से ख़ून निकलना, रक्त अथवा जल के दस्त होना और निमोनिया आदि अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा हो जाते हैं। किसी-किसी के कान या आँखें नष्ट हो जाती हैं।

चिकित्सा—(१) यदि रोगी बलवान् हो, तो पहले तीन-चार दिन तक पटोलपत्र, नीम-छाल, बकायन के पत्ते—प्रत्येक का रस एक-एक तोला लेकर उसमें घुड़वच, मुलेहठी, इन्द्रजौ और मैनफल का चूर्ण प्रत्येक तीन-तीन माशा प्रक्षेप देकर पिलाना चाहिए। इससे रोगी को वमन होगी और बहुत सा पित्त और कफ बाहर निकल आएगा; और इस रोग का विष प्रबल नहीं होने पाएगा।

(२) तितली के पत्तों का रस चार तोला, हल्दी का चूर्ण आधा तोला मिला कर पिलाने से कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर विशेष लाभ होता है। इस प्रकार वमन, विरेचन कराने से रोग का विष बहुत प्रमाण में बाहर निकल जाता है। पिडिकियाँ में भी अधिक पीव नहीं पड़ने पाती और वे शीघ्र ही सूख जाती हैं।

(३) अमृतादि क्वाथ—गिलोय, अडूसा की छाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, सतोने की छाल, खैर-छाल, अनन्तमूल, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी इन सबको समभाग मिला कर दो तोला लेकर क्वाथ बना लेना चाहिए। इसके पीने से पित्त, श्लेष्माधिक मसूरिका, शीतपित्त और ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

(४) पटोलादि क्वाथ—पटोलपत्र, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा की छाल, जवासा, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, पीतपापड़ा इनको सम भाग में दो तोला लेकर पाचन कषाय बनाना चहिय। इसके पीने से अपक्व मसूरिका शीघ्र पक जाती है और पकी हुई जल्दी ही सूख जाती है।

(५) खदिराष्टक क्वाथ—खैर की छाल, हरड़, बहेड़ा,

आमला, नीम की छाल, पटोलपत्र, गिलोय, अडूसा की छाल प्रत्येक को सम भाग मिलाकर दो तोले का क्वाथ बनाकर पीने से रोमान्तिका व मसूरिका में शीघ्र ही आरोग्यता प्राप्त होती है। मसूरिका-रोगी का बिछौना सुन्दर और साफ़ होना चाहिए; और उसमें ऊपर से नीम के पत्ते, हल्दी का चूर्ण बिछा कर रोगी को सुलाना चाहिए । बिछौने के चारों तरफ़ तथा रोगी के हाथ में भी नीम की छोटी-छोटी टहनियाँ रखनी चाहिए । शुद्ध तिल या नारियल का तेल और नीम के पत्ते इन दोनों को पीस कर या तेल पकाकर शरीर में मालिश करनी चाहिए । पञ्चतिक्त घृत की मालिश भी परमोपयोगी है।

पथ्य—खील का माँड, जल-बार्ली, साबूदाना और अवस्थानुसार दूध देना चाहिए। इसके बाद पिडिकियों के पकते समय रोगी को खीर, हलुवा आदि पदार्थ निःशङ्क होकर देने चाहिए; क्योंकि इस अवस्था में रोगी को उपवास कराना अत्यन्त अनिष्टकारक है।

मसूरिका-रोग की चिकित्सा में देशी चिकित्सा, जैसी कि वर्त्तमान समय में शीतला वाले के लिए की जाती है, डॉक्टरी चिकित्सा की अपेक्षा बहुत अच्छी होती है। इसलिए उसमें उक्त प्रकार की चिकित्सा आयुर्वेद के मत से करना बहुत अच्छा है।

मसूरिका-प्रतिषेध—पहले यह बात बता दी गई है कि बसन्त-रोग (मसूरिका) में टीका लगाना सब से उत्तम प्रतिषेध का उपाय

है। इसके सिवाय छोटे करेले के पत्तों का रस एक तोला, हल्दी का चूर्ण तीन माशे मिलाकर प्रातःकाल प्रतिदिन खाने से वसन्त-रोग का भय नहीं रहता। और भी जो रोग-प्रतिषेध के सम्बन्ध में कहे हुए नियम हैं, उनका पालन करना और उन दिनों होम, व्रत, वेद-पाठ, सत्कथा वार्ताओंकी चर्चा के साथ पवित्रता की विशेष आवश्यकता है।

लघुमसूरिका—इस रोग में साधारणतः कोई विशेष औषधि करने की आवश्यकता नहीं है। इसमें बहुत छोटी पिडिकियाँ दूर-दूर पर शीघ्र ही निकल आती हैं; और तीन-चार दिन में ही ज्वर उतर जाता है। इस रोग में प्रायः सात-आठ दिन में आरोग्य-लाभ होता है।

मान्तिका—यह रोग अधिकतर बच्चों को ही होता है, इसमें अत्यन्त शीत के साथ तीन-चार दिन के बीच में ही मुख व शरीर में कुछ ऊँचे फैले हुए ताम्र वर्ण के छोटे-बड़े अनेक क़िस्म के चकत्ते से निकल आते हैं। कभी-कभी इस रोग में आख़िरी अवस्था पर निमोनिया और अतिसार भी हो जाता है। इस रोग से बच्चों की मृत्यु होने की कुछ शङ्का रहती है, और प्रायः वे मर भी जाते हैं। इसकी चिकित्सा अवस्थानुसार मसूरिका अथवा वात-श्लैष्मिक ज्वर की तरह करनी चाहिए। कफ की ख़राबी अधिक होने पर दशमूल का काथ, पिप्पली चूर्ण के साथ देना अथवा आधी या चौथाई रत्ती मकरध्वज और दो रत्ती नौसादर मिलाकर प्रतिदिन

पाँच-सात बार खिलाना चाहिए। रोगी को सबसे अलग साफ़ कमरे में रखना अत्यन्त आवश्यक है।

पुरातन वा विषम-ज्वर (मलेरिया)—पुराने ज्वर के बारे में आयुर्वेद में लिखा है :—

त्रिसप्ताह व्यतीतः स्तुज्वरो य स्तनुताङ्गतः ।
प्लीहाग्निसादं कुरुते सजीर्ण ज्वर उच्यते ॥

अर्थात्—साधारणतः जो ज्वर तीन सप्ताह से अधिक काल तक रहता है और जिसमें अग्निमान्द्य के साथ प्लीहा (तिल्ली) बढ़ जाती है, उसे जीर्ण या पुरातन ज्वर कहते हैं।

जिस ज्वर को लोग महीन ज्वर कहते हैं, उसे पुरातन ज्वर समझना चाहिए। इस ज्वर में प्लीहा-वृद्धि के साथ मन्द रूप से ज्वर हर समय बना रहता है। क्षयरोग के ज्वर को भी पुरातन ज्वर कहा जा सकता है; क्योंकि उसमें धीरे-धीरे विकृति पैदा होने से राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के अनेक ज्वरों में मलेरिया विषम ज्वर प्रधान होता है। जहाँ अधिक जल भरा हो और उसमें सिवार, घास-पात आदि के सड़ने से वहाँ का जल-वायु दूषित हो गया हो, ऐसे स्थान पर मलेरिया उत्पन्न हो जाता है; जैसा कि चरक में लिखा है :—

भूवाष्पान्मेघनिष्पन्दात्पाका दम्लाज्जलस्य च ।
वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः ॥

अर्थात्—वर्षा-ऋतु में पृथ्वी की उष्मा (भाप) मेघों का हर समय

झरते रहना तथा जल के अम्लपाक होने से अग्निमान्द्य होकर वात, पित, कफ आदि दोष कुपति हो जाते हैं।

ऐसी ही जगहों पर मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति लिखी गई है। वर्षा-काल या शरद-ऋतु (आश्विन, कार्तिक) में जो ज्वर प्रायः उत्पन्न होता है, वह अधिकांश में मलेरिया ज्वर ही होता है। यह ज्वर साधारणतः पहले नवीन ज्वर के सदृश उत्पन्न होता है।

संक्षिप्त लक्षणादि—प्रायः मलेरिया ज्वर एकदम बहुत जोर के साथ नवीन ज्वर के सदृश आक्रमण करता है। बाद को बहुत सी जगह कुछ घण्टों के बाद उतर जाता है, और एक या दो दिन का अन्तर देकर या कहीं-कहीं प्रतिदिन प्रकट होता है। प्रायः ज्वर आने के पहले शिर में पीड़ा, शीत और शरीर में कम्प होता है; और ज्वर के समय अत्यन्त दाह तृष्णा, और बेचैनी रहती है। ज्वर छूटने के कुछ समय पहिले अत्यन्त वमनेच्छा और पित की वमन हो जाती है। अधिकतर ज्वर उतरते समय शरीर में पसीना आता है। कहीं-कहीं ऐसा देखा जाता है कि इस ज्वर के अत्यन्त प्रबल होने पर सन्निपात ज्वर के लक्षण दिखाई देते है; किन्तु योग्य चिकित्सा कराने से प्रायः दो-चार दिन के अन्दर ही पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

मलेरिया का विष अत्यन्त प्रबल होता है। यह पहले-पहल जड़ पकड़ कर धीरे-धीरे दो-तीन सप्ताह पर्यन्त लगातार उत्पन्न होता है। इसे सन्तत ज्वर कहते हैं। लिखा है:—

जीभ मैली मालूम पड़ती हो, तो साधारण ज्वर-प्रकरण में लिखे हुए मृदु विरेचन का प्रयोग करना चाहिए और ज्वर छोड़ने के बाद रोगी को खीलों का माँड, जल वार्ली तथा जल साबूदाना आदि देने चाहिए। यकृत की पीड़ा होने पर भी इसी तरह की व्यवस्था करनी चाहिए। जीभ के साफ़ रहने पर अथवा रोगी के अत्यन्त दुर्बल रहने पर पिप्पली-सिद्ध दूध का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। प्रतिदिन अवस्था के अनुसार दूध का साबूदाना चार-पाँच बार आध सेर से तीन पाव पर्यन्त खिलाना चाहिए। दो-तीन दिन बाद ज्वर के शान्त होने पर रोगी को सूजी की रोटी और भात देना चाहिए।

मलेरिया ज्वर की पहली अवस्था में बहुत सरलता के साथ आरोग्य-लाभ हो सकता है; किन्तु रोग का निर्मूल करना कठिन है। प्रायः देखा जाता है कि आजकल मलेरिया ज्वर की चिकित्सा करने पर ज्वर छूट जाने के बाद फिर दस-पन्द्रह दिन के बाद या महीना भर के बाद उसी ज्वर का आना प्रारम्भ होता है। इसलिए ज्वर बन्द होने के बाद कम से कम दो महीना अथवा आवश्यकतानुसार तीन महीने तक योग्य औषधि का सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है। पुरातन मलेरिया ज्वर को निर्मूल करने के लिए आयुर्वेदिक प्रयोग अत्यन्त लाभदायक हैं; परन्तु बहुत से लोग भ्रमवश उनको साधारण समझ कर काम में नहीं लाया करते। आयुर्वेद में नीम की छाल, करञ्ज, सँभालू के पत्ते, सतोने की छाल आदि बहुत सी तिक्त औषधियाँ ज्वर को नाश

करने वाली हैं। इसके सिवाय बहुत सी शास्त्रोक्त धातुओं से बनी हुई औषधियाँ भी अत्यन्त लाभदायक हैं। नूतन व पुरातन मलेरिया ज्वर में आयुर्वेदशास्त्र के अमृतारिष्ट, करञ्जादि वटी तथा सुदर्शन चूर्ण, जयमङ्गल, मृत्युञ्जय, महाज्वराङ्कुश आदि औषधि-प्रयोग अत्यन्त उपकारी हैं। आयुर्वेद-शास्त्र में मलेरिया ज्वर के विष को निर्मूल करने के लिए अमृतारिष्ट को एक अव्यर्थ औषधि माना है।

मलेरिया ज्वर की महौषधि आजकल कुनैन भी मानी जाती है; परन्तु उसके सम्बन्ध में इस देश के बहुत से लोगों का अत्यन्त मत-भेद है; क्योंकि उससे बहुतों को लाभ की अपेक्षा हानि उठानी पड़ती है। विचारने से ज्ञात होता है कि उपरोक्त अवस्था कुनैन से तभी हो सकती है, जबकि उसे अयुक्तिपूर्वक सेवन किया जाय। कुनैन को विशेष यकृत-विकार के न होने पर, ज्वर छूटने के बाद या अवस्था विशेष में (किसी अंश में) ज्वर के होने पर सेवन करने से कोई खराबी नहीं होती है। वास्तव में कुनैन नवीन मलेरिया की अव्यर्थ महौषधि है। साधारणतः नवीन मलेरिया में दो-तीन दिन तक पाँच ग्रेन के हिसाब से प्रतिदिन दो या तीन बार कुनैन खाने से ज्वर बन्द हो जाता है। इससे अधिक मात्रा में अर्थात् प्रति दिन तीस-चालीस ग्रेन कुनैन खाना अनावश्यक और अत्यन्त हानिकारक है। ज्वर बन्द होने के बाद भी दस-पन्द्रह दिन तक प्रति दिन पाँच-सात ग्रेन के हिसाब से उसे खाना और बाद को एक महीने तक प्रति सप्ताह में

दूध के साथ या गुलकन्द और सनाय मिला कर खाए या शुद्ध एरण्ड-तेल गर्म दूध में पीए।

(२) तृष्णा अधिक होने पर सौंफ की पोटली पानी में डाल कर चूसना चाहिए। मुँह में आलूबुखारा रखना व पीपल की छाल का बुझा हुआ जल पिलाना चाहिए अथवा ठण्डे पानी में कागज़ी नीबू डाल कर थोड़ा-थोड़ा पिलाना चाहिए। इतना करने पर भी यदि तृष्णा शान्त न होती हो, तो पूर्वोक्त षडङ्ग-पानी बना कर ठण्डा होने पर देना चाहिए।

(३) अधिक दाह में शर्बत बनफ़्शा को पानी में मिला कर देने से दाह शान्त होता है और प्यास कम लगती है। शिर-पीड़ा के लिए कोई शीतवीर्य चन्दनादि या आमले के तेल की मालिश करनी चाहिए।

(४) ज्वर आने के चार-पाँच घण्टे पहले सँभालू के पत्ते छः माशा हाथ से मसल कर बारीक कपड़े में पोटली बना ले; फिर उसको हर समय सूँघते रहना और पोटली को नाक के पास ही रक्खे रहना चाहिए। इसके साथ ही पूर्वोक्त रस की दो-चार बूँदें बीच-बीच में नाक में डाल कर नाश लेनी चाहिए। इस प्रयोग से अत्यन्त आश्चर्यजनक फल होता है। यह मलेरिया ज्वर के लिए कुनैन के सदृश उपकार करने वाली औषधि है।

(५) अगस्ति के पत्तों का रस तीन-चार बूँद में दो-तीन बार नास लेने से चातुर्थिक, तृतीयक, बारी के बुख़ार बन्द हो जाते हैं।

(६) लाल फिटकरी भूनकर छः रत्ती से एक माशा तक

ज्वर-वेग में गर्म जल के साथ ज्वर के पूर्व ही देने से लाभ होता है। ज्वर शान्त होने पर दो-एक दिन बाद मूँग का यूप और धीरे-धीरे गेहूँ की रोटी आदि हलके भोजन देने चाहिए।

(७) गिलोय, धनिया, नीम की छाल, लाल चन्दन, पद्माख इन सब औपधियों को समभाग में दो तोला भर लेकर आधा सेर पानी डाल कर आग पर चढ़ा दे। छटाँक या आध पाव शेप रहने पर उतार ले, फिर उसमें ठण्ढा होने पर छः माशा शहद और मिश्री मिलाकर पिलाए। यह काढ़ा प्रति दिन दो बार ज्वर बन्द न होने तक पिलाता रहे।

(८) अड़ूसा की छाल, आँवला, शालपर्णी, देवदारु, हरड़, सोंठ इन सबको मिलाकर दो तोला का काथ बना ले। फिर उसमें से आधी छटाँक की मात्रा में ज्वर आने के बारह घण्टे पहले दो-तीन घण्टे के अनन्तर देता जाए, यह बारी के बुखार के लिए सर्वोत्तम औपधि है। इसके पिलाने से दो-तीन वार ज्वर आकर पीछे अवश्य बन्द हो जाता है। इसे वासादि काथ कहते हैं।

(९) सोंठ, नीम-गिलोय, नागरमोथा, रक्तचन्दन, खस और धनिया मिलाकर दो तोले क्वाथ बना कर ठण्ढा होने पर छः माशा शहद और मिश्री मिला कर पिलाना चाहिए। इसे सुण्ठ्यादि क्वाथ कहते हैं।

(१०) नीम-गिलोय और पित्तपापड़ा एक तोला, अदरक छः माशा, अगस्ति के पत्ते पाँच माशा, सँभालू के पत्ते पाँच माशा इन सबको एकत्र कूट कर रस निकाल कर शहद के साथ मिलाकर

पिलाने से यकृत्-विकारयुक्त पुरातन ज्वर में विशेष लाभ होता है।

(११) भारङ्गी, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, कुड़ा की छाल, सोंठ, छोटी पीपल और दशमूल की औषधि इनका क्वाथ बना कर विधानपूर्वक पीने से मलेरिया ज्वर में अत्यन्त उपकार होता है। यह स्मरण रहे कि किसी भी क्वाथ की औषधियाँ पुरानी न होनी चाहिए। इसे भार्ङ्ग्यादि क्वाथ कहते हैं।

(१२) करञ्ज की मींगी आधा तोला, काली मिर्च तीन माशा, तुलसी के पत्ते तीन माशा इन सबको खरल में डाल कर पीस करके आठ-दस गोलियाँ बना लेनी चाहिए। इन गोलियों को ज्वर आने के आठ-दस घण्टे पहले प्रति घण्टे के हिसाब से एक-एक गोली जल के साथ खिलानी चाहिए। बालक के लिए चार-पाँच गोली ही खिलाना पर्याप्त है। युवा पुरुष के लिए आठ-दस गोली देनी चाहिए। यह वटी ज्वर में कुनैन के सदृश काम करती है; किन्तु ज्वर में अतिसार होने पर इसको न देना चाहिए।

(१३) यकृत्-वेदना होने पर काले शिरस के फल का छिलका गोमूत्र अथवा जल में पीस कर, अग्नि में पका, एक पतले कपड़े की थैली में भरकर जितना गर्म रोगी सह सकता हो, प्रतिदिन तीन-चार बार यकृत् के ऊपर स्वेद (बफ़ारा) देना चाहिए। उदर की सम्पूर्ण दाहिनी पसलियों की जकड़ाहट होने पर यकृत्-स्थान में प्रायः आधा या पौन घण्टे बफ़ारा देना चाहिए, इससे यकृत् की विकृति शीघ्र दूर हो जाती है। यदि बच्चे को स्वेद देना हो, तो केवल गोमूत्र से ही देना चाहिए अथवा नौसादर पाँच रत्ती,

पीपल-चूर्ण पाँच रत्ती अदरक व शहद के साथ प्रति दिन दो-तीन वार सेवन करने से यकृत्-विकृति में विशेष लाभ होता है। नीरोग गौ के बछड़े का मूत्र प्रतिदिन आधी छटाँक दो वार पीने से यकृत् की विकृति दूर हो जाती है।

प्लीहा की विकृति होने पर उपरोक्त प्रकार से ही प्लीहा के ऊपर स्वेद देना चाहिए, और खाने के लिए निम्नलिखित औषधि-प्रयोग करने चाहिए:—

(१) यवक्षार तीन रत्ती, पिप्पली-चूर्ण तीन रत्ती और आधा तोला पुराना गुड़ मिलाकर ऐसी मात्रा दिन में दो वार खानी चाहिए।

(२) पहले दिन पुरानी छोटी पीपल दो, दूसरे दिन तीन तीसरे दिन, चार, चौथे दिन पाँच इस प्रकार एक क्रम से बढ़ा कर दस पीपल तक निम्नलिखित नियमानुसार सेवन करने से पुरातन ज्वर और प्लीहा में विशेष लाभ होता है। इसको पिप्पली वर्द्धमान योग कहते हैं। यदि रोगी वलवान् हो तो पीपल को पानी में धोकर उपर्युक्त संख्या में दूध या जल के साथ पीस कर खिलाना चाहिए। रोगी की दुर्वलावस्था में या बालक होने पर इन पीपलों का क्वाथ वना कर पिलाना चाहिए अथवा पीपल को जल में भिगोकर प्रातः-काल उनको थोड़ा मसल कर, चीनी या मिश्री मिला कर पिलाना चाहिए।

यदि मलेरिया ज्वर में यकृत्-प्लीहा की वृद्धि तथा अरुचि और अग्निमान्द्य हो, तो उसके लिए निम्नलिखित योग काम में लाने से विशेष लाभ होता है।

अदरक एक छटाँक और काला नमक सवा तोला इन दोनों को अच्छी तरह सिल पर पीस कर लुगदी को काँच या पत्थर की कुण्डी में रख दे, फिर इसमें महाद्रावक या शङ्खद्राव की साठ बूँदें या इसके अभाव में तीव्र यवक्षार द्रावक (Strong Nitric Acid) की तीस बूँदें और तीव्र लवण द्रावक (Strong Hydrochloric Acid) की तीस बूँदें मिलाकर किसी काष्ठ की लकड़ी से घोंट कर मिला लेना चाहिए। यह एक प्रकार की चटनी सी बन जायगी। यह बहुत स्वादिष्ट, रुचिकारक, क्षुधावर्द्धक और यकृत्-प्लीहा के दोषों को शान्त करने वाली है। भोजन करने के एक घण्टे बाद तीन माशा प्रमाण में थोड़ा-थोड़ा करके दाँतों से बचा कर खाना चाहिए; क्योंकि इसमें तेजाब का संयोग विशेष है, जिससे दाँतों की जड़ को हानि न पहुँचे।

अन्य पुरातन ज्वर—यह बात पहले लिखी जा चुकी है कि पुराने ज्वरों में मलेरिया ज्वर ही प्रधान है; किन्तु मलेरिया को छोड़ कर और भी अनेक प्रकार के पुरातन ज्वर होते हैं। साधारणतः पुराने ज्वरों की उत्पत्ति शरीर की दुर्बलता, रक्त-विकृति या रक्त-हीनता, मेदा, धातु की खराबी, कफ की वृद्धि, पित्त-विकार और शरीर में अनेक प्रकार के छिपे हुए रोगों के कारण हो जाया करती है। अमावस्या, पूर्णिमा या एकादशी के दिन शीत देकर कम्प के साथ एक प्रकार का ज्वर आता है, इसको श्लैष्मिक ज्वर कहते हैं। इसमें हाथ-पाँव और अण्डकोशों में सूजन के साथ आक्षेप भी होता है। राजयक्ष्मा आदि अनेक भयङ्कर रोगों के

लक्षणों के रूप में भी प्रायः पुरातन ज्वर देखा जाता है। ऐसी अवस्था में किसी सुयोग्य चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए। और वहाँ पर भी, जहाँ इस बात का ज्ञान न हो सके कि ज्वर किस कारण से है, अथवा कास, पेट में दर्द आदि लक्षणों के होने पर अच्छे चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए। साधारण पुरातन ज्वर तथा मलेरिया ज्वर में निम्नलिखित औषधोपचार करना अत्यन्त फलप्रद है।

पुरातन ज्वर में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें लङ्घन न कराया जाय; क्योंकि ज्वर के कारण शरीर धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है, जिससे रोगी को अरुचि तथा अग्निमान्द्य हो जाता है; और ऐसी दुर्बलावस्था में लङ्घन देने से रोगी के प्राणनाश होने की आशङ्का है। इस अवस्था में रोगी के लिए दूध अमृत के सदृश गुणकारक होता है, इस वास्ते रोगी को साबूदाना या बार्ली मिला कर अधिक प्रमाण में दूध देना चाहिए। यदि यकृत् की ख़राबी हो, तो पूर्वलिखित पिप्पली-सिद्ध दूध देना चाहिए। इसके सिवाय सूजी अथवा पूर्वलिखित विधि से आटे की रोटी, मूँग का यूष और जाङ्गल मांस-रस देना भी अत्यावश्यक है। अवस्थानुसार भात और मुर्गी के अण्डे भी दे सकते हैं।

औषधि-प्रयोग—(१) छोटी कटेरी, सोंठ और गिलोय को समभाग मिला कर, दो तोला आध सेर जल में पकाकर आध पाव बाक़ी रहने पर प्रतिदिन दो-तीन बार देना चाहिए। इसके

सेवन करने से जीर्ण ज्वर के साथ कास, अरुचि, अग्निमान्द्य आदि विकार दूर होते हैं।

(२) नीम-गिलोय, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, नागरमोथा, पटोल-पत्र प्रत्येक आधा-आधा तोला लेकर केले के पत्ते में लपेट कर, कपड़े से बाँध कर ऊपर से मिट्टी का पतला लेप कर दे। फिर उसे उत्तम रीति से अग्नि में पुटपाक विधान द्वारा पका ले, अर्थात् जब बाहर की मिट्टी का वर्ण पक कर लाल हो जाय, तब कपड़ा तथा मिट्टी अलग कर औषधियों को निकाल कर प्रति दिन शहद मिलाकर खाने से भयङ्कर वात-पैत्तिक पुरातन ज्वर शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

(३) दस्त साफ़ न हो और यकृत् में ख़राबी हो, तो नीम-गिलोय एक तोला, पित्तपापड़ा एक तोला, अदरक छः माशा, बन्दाल डोडा इन छः औषधियों को थोड़ा सा कूट कर उक्त विधि से केले के पत्ते तथा कपड़े में लपेट, बाहर से मिट्टी का लेप करके मन्द अग्नि में अच्छी तरह पका ले। बाद में पत्ते मिट्टी आदि अलग करके औषधि को निकाल कर किसी कलई के बर्तन में रात्रि को बाहर रख दे, फिर प्रातःकाल इसका रस निकाल कर आधा तोला शहद मिलाकर खाए। इसके द्वारा अनेक कठिन जीर्ण ज्वर शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

(४) पटोलादि क्वाथ—पटोलपत्र, नीम की छाल, मुनक्का काला, अनन्तमूल, त्रिफला, अडूसे की छाल इनको मिलाकर दो तोले का क्वाथ बनाकर प्रति दिन दो बार पिलाना

चाहिए। इस क्वाथ से अग्निदीप्त तथा दस्त साफ़ होता है। पित्त और कफ के जीर्ण ज्वर में भी यह विशेष लाभकारी है। इसके सिवाय पूर्वलिखित नवज्वर में भारङ्ग्यादि क्वाथ दिन में दो बार देने से जीर्णज्वर नष्ट होता है और अग्निदीप्त के साथ कफ की शान्ति और वायु का अनुलोमन होता है। कभी, कभी देखा गया है कि इस प्रकार साधारण चिकित्सा करने पर पुरातन ज्वर शान्त नही होता, इसलिए ऐसे ज्वरों में अवस्थानुसार शास्त्रोक्त जयमङ्गल रस, विषम ज्वरान्तक लोह, वसन्त मालती और सुदर्शन चूर्ण आदि औषधियाँ सेवन करानी चाहिए। उक्त सम्पूर्ण औषधियाँ पुरातन ज्वर में विशेष लाभदायक हैं।

(५) यदि पुरातन ज्वर में अरुचि, दाह, तृष्णा, मुख-शोष तथा कोष्ठ में रूक्षता के साथ यकृत्-विकृति हो, तो ऐसी अवस्था में दालचीनी एक भाग, छोटी इलायची के बीज दो भाग, छोटी पीपल चार भाग, वंसलोचन आठ भाग और मिश्री सोलह भाग इन सबको पीस कर सितोपलादि चूर्ण बना ले। फिर इसमें चार भाग सत्त गिलोय मिला कर पाँच-छः दिन तक सायङ्काल को एक तोला शर्बत बनफ़्शा के साथ चाटने से पूर्ण लाभ होता है।

(६) यदि जीर्णज्वर के साथ दुर्बलता, पाण्डुवर्ण, अग्निमान्द्य हो, तो पिप्पली तण्डुल चूर्ण चार रत्ती और मालती वसन्त एक रत्ती, सत्त गिलोय दो रत्ती मिलाकर शहद के साथ प्रति दिन दो बार खाने से अत्यन्त लाभ होता है। अथवा लोह-भस्म एक रत्ती, अभ्रक-भस्म एक रत्ती, स्वर्णमाक्षिक-भस्म आधी रत्ती मिलाकर

प्रति दिन शहद और अदरक के रस के साथ मिला कर खाना चाहिए। यदि सुदर्शन चूर्ण का प्रयोग करना हो, तो छः माशे चूर्ण, तुलसी के पत्ते नग, सात काला नमक तीन माशा इन तीनों को एक साथ घोंट-छानकर छटाँक भर प्रमाण में प्रति दिन दो बार पीना चाहिए।
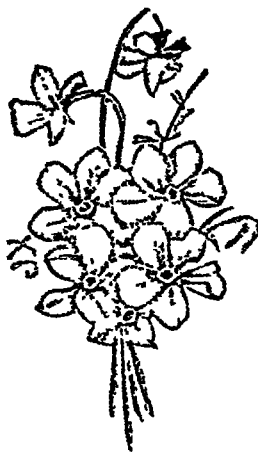
अतिसार

जीर्ण और क़ब्ज़ के कारण या भारी, चिकनी, अत्यन्त रुक्ष चीजों के खाने या ऋतु व समय के परिवर्त्तन से प्रायः अतिसार हो जाता है। इसमें पूर्वोक्त कारणों द्वारा शरीर में एक क़िस्म का तरल पदार्थ इकट्ठा हो जाता है, जो मल के साथ मिलकर बार-बार वेग के साथ मल-द्वार से निकलता है। इसी को अतिसार कहते हैं। यह अतिसार दो प्रकार का होता है। पहला आम और दूसरा निराम। जिसमें अजीर्ण के कारण अपरिपक्व मल निकलता है, उसका नाम आम (कच्चा) अतिसार है; और जिसमें केवल जल के सदृश पतला पदार्थ निकलता है, उसे निराम अतिसार कहते हैं। साधारणतः सभी अतिसारों की पहली अवस्था में आम और दूसरी अवस्था में निरामता होती है।

आमातिसार के लक्षण—अतिसार में दोषों का कच्चापन इस तरह ज्ञात होता है कि उसमें अनेक प्रकार के वातादि दोषों के वर्ण के साथ अत्यन्त दुर्गन्धि आती है, और मल चेपदार तथा पानी में डालने से डूब जाता है। यदि आम के लक्षण न हों और विशेषकर मल हलका होने से पानी में तैरता हो और दुर्गन्ध-रहित हो, तो समझना चाहिए कि मल परिपक्व (निराम) है।

इन साम तथा निराम अतिसार के लक्षणों के ज्ञान का प्रयोजन आगे की चिकित्सा में अतिसार की साम तथा निराम अवस्था में पाचन तथा स्तम्भन देने का है, जिसको आगे चलकर लिखेंगे। कॉलरा व हैज़ा भी एक प्रकार का अतिसार ही है; किन्तु हैज़े के अतिसार में यह बात विशेष होती है कि यह एक प्रकार के संक्रामक कीटाणुओं के खान-पान के साथ पेट में चले जाने से उत्पन्न होता है। इस बात को आगे कॉलरा के प्रकरण में लिखेंगे; क्योंकि यह अतिसार से भिन्न होने के कारण अलग लिखा गया है। रक्तातिसार तथा प्रवाहिका रोग की चिकित्सा "प्रवाहिका-अधिकार" में लिखी हुई है।

साधारण व्यवस्था—यदि दस्तों में मल कच्चा निकलता हो या आमावस्था हो, तो अवस्थानुसार रोगी को उपवास अथवा अरारोट, जल की वार्ली, सावूदाना आदि लघु पथ्य देने चाहिए। रोगी के बलवान् होने पर एक अथवा दो दिन का उपवास कराना अच्छा है; परन्तु निरामावस्था में उपवास कराना अच्छा नहीं है। ऐसी दशा में रोगी की बल-रक्षा करने की विशेष आवश्यकता है। इसलिए रोगी को भात अथवा खीलों का माँड़, बकरी का दूध, अरारोट आदि लघु पथ्य चार-पाँच घण्टे के अन्तर से देते रहना चाहिए, जिससे रोगी का बल न घटने पाए। निरामावस्था में जबकि रोगी को जल के सदृश पतले दस्तों के साथ तृष्णा की भी अधिकता हो, तो उसे जल यथेष्ट परिमाण में पीने को देना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा, तो रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जायगा।

निरामावस्था में रोगी को बकरी या गौ का दूध एक पाव और एक पाव जल, एक तोला नागरमोथा या बेल की गिरी के साथ पकाकर दूध अवशेष रखकर ठण्ढा करके दो-तीन बार थोड़ा-थोड़ा देना चाहिए। अतिसार में दूध देने पर उसमें अरारोट या बार्ली का जल मिलाकर खिलाना अच्छा है। अतिसार के शान्त होने पर पुराने चावलों का भात या मूँग की खिचड़ी, लौकी, परवल आदि का शाक तथा ताज़े दही का पानी पथ्य में देना अच्छा है।

अतिसार में औषधि देने में यह प्रधान नियम है कि अतिसार की सामावस्था में उसको रोकने वाली औषधि न देनी चाहिए; किन्तु निरामावस्था में अतिसार को रोकने वाली औषधि देना अच्छा है। सामावस्था में अतिसार को रोकने वाली औषधि के प्रयोग करने से कच्चा मल इकट्ठा हो जाता है और ऐसी अवस्था में ज्वर, पेट में अफरा, शूल, मरोड़ आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

अतिसार की सामावस्था में पाचक औषधादि—(१) अतिसार में थोड़ा-थोड़ा बँधा हुआ मल निकलने पर और पेट में ऐंठन के होने पर हरड़ एक तोला और पीपल आधा तोला दोनों को पीसकर एक छटाँक गर्म जल के साथ खिलाना चाहिए। इसके सेवन से आँव पकता है और एक-दो दस्त होकर पेट की ख़राबी साफ़ हो जाती है।

(२) धान्यपञ्चक क्वाथ—धनिया, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रबाला, बेल की गिरी इनको मिलाकर दो तोला लेकर पाचन

क्वाथ कुछ गुनगुना पिलाने से आँव का परिपाक हो जाता है।

(३) पीपल, पीपलामूल, गज-पीपल, चित्रकमूल, सोंठ, अतीस, हरड़ और काला नमक सबको दो तोला लेकर क्वाथ बनाकर दो रत्ती भुनी हींग के साथ पीने से एक-दो बार दस्त होकर पेट का आँव और ऐंठन शान्त हो जाती है।

(४) शास्त्रोक्त सिद्ध "प्राणेश्वर वटी" को हर दो-तीन घण्टे बाद जल के साथ खाने से अतिसार की आमावस्था में विशेष उपकार होता है। यह भी एक उत्तम पाचक औषधि है।

निरामावस्था में स्तम्भन औषधि—(१) कच्चटादि क्वाथ—चौलाई, अनार, आम, जामुन के पत्ते, नेत्रवाला, नागरमोथा, सोंठ सबको मिलाकर दो तोले का क्वाथ बनाकर चार-पाँच घण्टे के अन्तर से देना चाहिए। इस क्वाथ से अतिसार का वेग शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

(२) कुटजादि क्वाथ—इन्द्रजौ, अनार का छिलका, नागरमोथा, धाय के फूल, बेल की गिरी, नेत्रवाला, लोध, लाल चन्दन सबको मिलाकर दो तोला लेकर क्वाथ की रीति से पकाकर छः-सात घण्टे के अन्तर से पिलाना चाहिए। यह क्वाथ आम-दोष के लिए तथा पेट की ऐंठन व रक्तातिसार को शान्त करने में अत्यन्त उपयोगी है।

(३) बेलगिरी, नागरमोथा, धायके फूल, सोंठ, मोचरस इनका क्वाथ बनाकर आधा तोला शहद या मिश्री मिलाकर हर

छः घण्टे के बाद पिलाने से अत्यन्त भयङ्कर अतिसार भी शान्त हो जाता है।

(४) हरे आँवले (इनके अभाव में सूखे आँवलों को) जल में भिगोकर थोड़ी देर बाद पीसकर लुगदी बनाले, फिर इसको एक अङ्गुल की मोटाई में नाभि के चारों तरफ़ लेप करना चाहिए। बीच में नाभि खाली रख कर उसमें अदरक का रस गर्म करके भरना चाहिए। रस के ठण्ढा हो जाने पर उसे किसी सूखे वस्त्र या रूई से सुखा कर फिर उसमें दुबारा गर्म अदरक का रस भरना चाहिए। इस प्रकार आध घण्टे तक अदरक के रस को भरने के बाद नाभि के लेप तथा रस को अलग कर दे और सूखे कपड़े से पेट को अच्छी तरह पोंछ दे। यद्यपि यह योग एक साधारण मालूम पड़ता है, तथापि यह प्रायः अधिक आश्चर्यजनक फल दिखलाता है।

(५) कच्चे बेल की गिरी छः माशा और मिश्री छः माशा मिलाकर प्रति दिन दो-तीन बार खाने से अतिसार बन्द हो जाता है।

(६) एक अच्छे जायफल को लेकर उसके सिर के हिस्से को काट कर बीच में थोड़ा सा कोर करके छोटा सा गड्ढा बना लेना चाहिए। इसमें चार रत्ती अफ़ीम रखकर एक केले की डण्डी में छेद करके और जायफल रखकर उसी डण्डी के टुकड़े से छेद को भर कर, उसके बाहर चारों तरफ़ कपड़ा तथा मिट्टी पोतकर धीरे-धीरे उत्तम रूप से आग में सेंक लेना चाहिए। जब ऊपर की

मिट्टी कुछ लाल हो जाए, तो उसे निकाल कर कपड़ा-मिट्टी तथा केले की डाट को अलग कर भीतर के जायफल और अफ़ीम को निकाल ले। इनको पीस कर दस-बारह गोली बनानी चाहिए। ये गोलियाँ दो-तीन घण्टे के बाद एक-एक खाने से अतिसार शीघ्र ही बन्द हो जाता है। बन्द होने के बाद फिर यह औषधि न देनी चाहिए; किन्तु यह औषधि या और कोई अफ़ीम की बनी हुई औषधि बच्चों को देना अच्छा नहीं है। इसके सिवाय निराम या पक्वातिसार में शास्त्रोक्त कर्पूर-रस वटी, जातिफलादि वटी, जयावटी तथा अहिफेनासव आदि का प्रयोग करना चाहिए।

प्रवाहिका (पेचिश)
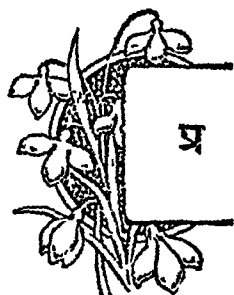
प्रवाहिका भी एक प्रकार का अतिसार है, इसी वास्ते आयुर्वेद में इसको अलग स्वतन्त्र रूप से न लिख कर अतिसार में लिखा है, तथा उसी में इसके लक्षण आदि के बारे में लिखा है :—

तासा मतीसार वदादिशेच्च लिङ्ग क्रमं चामविपक्वताञ्च ।

अर्थात्—अतिसार के ही सदृश लक्षण चिकित्सा तथा साम और निराम अवस्था होती है।

साधारणतः नाभि तथा पेट के नीचे के हिस्से में ऐंठन तथा मरोड़ के दर्द के साथ बार-बार साधारण या गुलाबी रङ्ग का आँवयुक्त दस्त होने को प्रवाहिका कहते हैं। चूँकि इस रोग में दस्त होते समय पेट में दर्द के कारण काँखने से बहुत देर तक बैठ कर थोड़ा-थोड़ा बार-बार दस्त उतरता है, इसलिए इसे प्रवाहिका या पेचिश कहते हैं। पेचिश की हालत में यदि आँव में रक्त मिला हुआ रहता है, तो उसे रक्त प्रवाहिका या आँव—ख़ून के दस्त कहते हैं; किन्तु ऐसी हालत को जिसमें ऐंठन तथा पेचिश के सिवाय ख़ून के दस्त होते हों, रक्तातिसार कहते हैं।

उपरोक्त रक्तातिसार तथा रक्त-प्रवाहिका रोग में गुदा के ऊपर मोटी आँत में बहुत से घाव हो जाते हैं। इसीलिए इस रोग में आँव के साथ रक्त या पीव देखी गई है।

प्रवाहिका में साधारण व्यवस्था—बहुत से रोगियों को अधिक दिन तक क़ब्ज़ होने के बाद पेचिश हुआ करती है, और बहुतों को पहले साधारण अतिसार की तरह कई बार दस्त होने के बाद केवल आँव पड़ने लग जाती है। साधारण रूप से दो-चार बार आँव के दस्त होने के बाद प्रायः आँव के साथ रक्त आने लगता है।

प्रवाहिका रोग में आँव को पकाने के लिए एक-दो दिन से अधिक लङ्घन नहीं देना चाहिए। यदि पेचिश की हालत में जीभ साफ़ है, तो पहले रोगी को अरारोट, बकरी का दूध, भात का माँड़ या साबूदाना आदि लघु पथ्य देने चाहिए। इस रोग में बार-बार दस्त होने के साथ ऐंठन तथा दर्द होने के कारण दुर्बलता अधिक हो जाती है, अतः बल-रक्षा के लिए रोगी को सुपथ्य पतली खाने की चीजें थोड़ा-थोड़ा करके देने की विशेष आवश्यकता है।

चिकित्सा—यदि रोगी को पहले बहुत क़ब्ज़ रहने के बाद प्रवाहिका हुई हो अथवा मल की परीक्षा करके देखा जाय कि उसके दस्तों में आँव के साथ छोटी-छोटी कठिन गोलियाँ जैसी निकलती हैं, तो पहले ऐसे रोगी को शुद्ध एरण्ड-तैल (कास्ट्रॉइल) गरम दूध के साथ दो तोला प्रमाण में पिलाना चाहिए। इससे

इकट्ठा हुआ कठिन मल निकल जाएगा। बहुत से स्थानों में ऐसी हालत में अतिसार में लिखी हुई हरड़ तथा पीपलों को बटकर खिलाने से कोष्ठ शुद्ध होने के बाद साधारण रूप में स्तम्भन औषधि देने से भी आरोग्य हो जाता है।

रक्त-प्रवाहिका रोग में निम्नलिखित डॉक्टरी-प्रयोग अत्यन्त गुणकारक है। मिग्नेशियम सल्फेट नामक औषधि प्रायः सभी डॉक्टरों के यहाँ मिल सकती है, इसका मूल्य भी बहुत कम (चार आने का आध सेर) है। इस औषधि को तीन माशे की मात्रा में चार-चार घण्टे के अन्तर एक छटाँक सौंफ (सौंफ़ के अर्क़) के जल के साथ चार-पाँच बार खाना चाहिए। इससे बहुत बार ऐसा होता है कि रोगी को जल के सदृश दस्त होकर आरोग्य लाभ हो जाता है। बाद को स्तम्भन औषधि भी दे सकते हैं।

पेट में यदि मल इकट्ठा न हो, तो निम्नलिखित प्रयोग काम में लाने चाहिए। इन्हीं को रक्तातिसार की निरामावस्था में भी प्रयोग कर सकते हैं :—

(१) ईसबगोल और मोचरस चार-चार रत्ती लेकर दूध के साथ हर तीन घण्टे के बाद खाने को देना चाहिए।

(२) कुटज दाड़िम क्वाथ—कच्चे अनार का छिलका व कुड़े की जड़ की छाल दोनों एक-एक तोला लेकर क्वाथ बनावे, ठण्डा होने पर इसमें छः माशा शहद मिलाकर खिलाने से आँव और खून के दस्त शीघ्र ही सहज में शान्त हो जाते हैं।

(३) कुड़े की गीली छाल को आग में कुछ सेंक कर उसका

छः माशे रस और विशल्यकर्णी (गोरखा पान) के पत्तों का रस छः माशा शहद के साथ प्रति दिन दो-तीन वार खिलाने से भयङ्कर रक्तातिसार शान्त हो जाता है ; किन्तु इसको रोग की पहली हालत में काम में न लाना चाहिए।

(४) कुटजादि क्वाथ—कुड़े की छाल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, नेत्रवाला, मोचरस, वेल की गिरी, अतीस, अनार का छिलका प्रत्येक तीन-तीन माशा आध सेर जल में पकावे और आध पाव रहने पर ठण्ढा करके पिला दे। इस क्वाथ के दो-तीन वार पिलाने से ज्वरयुक्त तथा ज्वर-रहित प्रवाहिका और रक्तातिसार शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

(५) आम, जामुन, आँवला इनके हरे पत्तों को एक-एक तोला लेकर कूट कर रस निकाले और उसके बराबर कच्चा गो-दुग्ध मिलाकर छः माशा शहद के साथ प्रतिदिन दो-तीन वार पीने से रक्तातिसार में विशेष लाभ होता है।

(६) मोचरस दो माशा और नागकेसर दो माशा दोनों को मिला कर शहद के साथ दो-तीन वार खाने से रक्तातिसार वन्द हो जाता है।

(७) कच्चे वेल की गिरी और मिश्री मिलाकर खाने से रक्त-प्रवाहिका में विशेष लाभ होता है। यदि खून अधिक निकलता हो, तो पूर्वोक्त वेल की गिरी और मिश्री के साथ दो माशा नाग-केसर मिलाकर खिलाना चाहिए।

अनेक समय प्रवाहिका रोग एक प्रकार के एमीवा नामक

कीटाणु से उत्पन्न होता है। ऐसी दशा में एलोपैथिक ऐमैटाइन (Emetine) नामक औषधि को पिचकारी (इन्जैक्शन) द्वारा त्वचा के भीतर प्रयोग करने से आश्चर्ययुक्त फल होता है।

(८) कच्चे बेल की गिरी, पुराना गुड़, तिल का तेल, पीपल और सोंठ इन औषधियों को समभाग लेकर विधिपूर्वक अवलेह बना ले। इस लेह के चाटने से शूल-सहित प्रवाहिका में जब वायु रुका हुआ हो, विशेष लाभ होता है।

यदि साधारण चिकित्सा से आरोग्य लाभ न हो, तो शास्त्रोक्त गङ्गाधर चूर्ण, महागन्धक योग, कुटजावलेह, कुटजपुट पाक आदि औषधियों का प्रयोग करना चाहिए और अच्छी तरह आरोग्य न होने तक भारी, स्निग्ध और अधिक भोजन तथा परिश्रम आदि का त्याग करना चाहिए।
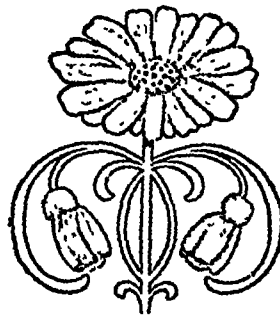
अजीर्ण व अग्निमान्द्य

री, चिकनी, अत्यन्त रुक्ष आदि चीजों के खाने से और अधिक भोजन या भोजन के ऊपर भोजन, दिन में सोने और रात्रि में जागरण आदि से प्रायः अजीर्ण हो जाया करता है।

साधारण व्यवस्था—नवीन अजीर्ण की अवस्था में पहले एक आध दिन का उपवास कराना अच्छा है। इसके बाद एक-दो दिन तक लघु भोजन कराना चाहिए; किन्तु पुरातन अजीर्ण रोगों में नियमानुसार पथ्य आदि पालन करने की विशेष आवश्यकता है। अनेक समय ऐसा होता है कि पुरातन अजीर्ण का रोगी लोभ या मूर्खता-वश कुपथ्य का सेवन कर लेता है। जिससे रोग में अनेक प्रकार की विकृति पैदा होती है, इसलिए ऐसी अवस्था में विशेष सावधान रहना चाहिए, या यह कहना चाहिए कि पुरातन अजीर्ण रोग में अत्यधिक सावधानता करना अच्छा नहीं; क्योंकि अति सावधानता से रोगी शीघ्र ही दुर्बल हो जाता है। साधारणतः भूख लगने पर पुराने चावलों का भात, मूँग की दाल या यूष और मांस-रस आदि हलके दस्तावर शाक थोड़े-थोड़े देने चाहिए।

इसके सिवाय अन्नकाल में यदि रोगी कुछ खाने को माँगता हो, तो उसे फल और हलकी चरपरी चीज़ें पापड़ आदि खिलाने चाहिए। दूध या मठा इन दोनों में से एक को प्रति दिन यथेष्ट रूप से पिलाना चाहिए। शुद्ध दूध सेवन करने के लिए यदि पेट में वायु के सञ्चार और निकास की आवश्यकता हो, तो दूध के बराबर वार्लीं का जल अथवा लाजमण्ड या थोड़ा भात मिलाकर खिलाना चाहिए। खट्टी, भारी व अधिक मसाले की बनी हुई और सरसों के तेल में छौंकी हुई तरकारी अजीर्ण-रोगी को न देनी चाहिए।

पुरातन अजीर्ण का रोगी प्रायः चञ्चल मन का हो जाता है। इसलिए ऐसी अवस्था में किसी साधारण मनुष्य की चिकित्सा न करानी चाहिए; बल्कि रोगी को आरोग करने के लिए किसी योग्य वैद्य की सम्मति के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

यदि रोगी अत्यन्त दुर्बल न हो, तो उसे दोनों समय थोड़ा-थोड़ा व्यायाम कराना चाहिए; क्योंकि अजीर्ण के लिए व्यायाम विशेप लाभप्रद है। यदि हो सके तो अपनी ताक़त के अनुसार प्रति दिन आधा मील या एक मील तक घूमना चाहिए।

औपधि-प्रयोग—(१) नागरमोथा छः माशा और कालीमिर्चें पाँच-छः दाने दोनों को पीस जल में मिलाकर गर्म करके खाने से नवीन अजीर्ण में विशेष लाभ होता है।

(२) भुनी हींग दो रत्ती और काला नमक छः रत्ती दोनों को आधी छटाँक लेकर अजवायन के अर्क़ के साथ खाने से अजीर्ण, अफ़रा व पेट-दर्द शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

(३) पुरातन अजीर्ण-रोग में निम्नलिखित सैंधवादि चूर्ण दो माशा एक-दो वार नीवू के रस या गर्म जल के साथ सेवन करने से विशेप लाभ होता है।

(४) सैंधवादि चूर्ण—सेंधा नमक, हरड़, पीपल, चित्रक छाल इनको समभाग लेकर चूर्ण बनाकर कपड़े से छान लेना चाहिए। इस चूर्ण को दो माशे के प्रमाण में प्रति दिन भोजन करने के बाद गर्म जल या नीवू के रस के साथ सेवन करने से अजीर्ण रोग नष्ट हो जाता है और भूख बढ़ती तथा कोष्ट शुद्ध रहता है।

(५) हिंग्वाष्टक चूर्ण—सोंठ, पीपल, मिर्च, अजवायन, सेंधा नमक, सफ़ेद जीरा, काला जीरा प्रत्येक एक-एक तोला और भुनी हींग दो माशा सबको कूट-पीस कर सूक्ष्म चूर्ण कर मिला ले। इसमें से एक-दो माशा जल के साथ खाने से पेट का अफरा और दर्द तथा वायु का अजीर्ण शीघ्र दूर हो जाता है। और जब कभी अजीर्ण की दशा में दस्त पतला होता हो, उस अवस्था में विशेप लाभप्रद है। इसको पुराने अजीर्ण में प्रति दिन भात के साथ दो-तीन ग्रासों में घी और नीवू का रस निचोड़ कर खाने से विशेप उपकार होता है; और यह खाने में भी स्वादिष्ट तथा रुचिकर है।

(३) अग्निवर्द्धक चूर्ण—पीपल छः माशा, जीरा सफ़ेद एक तोला, जीरा काला एक तोला, मिर्च एक तोला, सेंधा नमक एक छटाँक, भुनी हींग छः माशा, पिपरमेण्ट तीन माशा, टाटरी छः

माशा इन सबको बारीक पीसकर चूर्ण बना ले। इसको भोजन के पहले तथा भोजन के आध घण्टे बाद दो माशे सेवन करने से पुरातन अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, अरुचि तथा पतले दस्त का आना एकदम बन्द हो जाता है।

(७) प्रातःकाल या डेढ़ पाव गर्म जल चाय की तरह पका कर दस मिनिट के बाद थोड़ा-थोड़ा करके पीना चाहिए। इस प्रकार दस-पन्द्रह दिन तक पीने से पुराने अजीर्ण में विशेष उपकार होता है। यदि इस प्रकार करने से लाभ ज्ञात हो, तो एक-दो महीने तक इसी तरह जल-पान करना चाहिए। अधिक पुराने अजीर्ण की अवस्था में इस जल को प्रति दिन दो बार भोजन के दो घण्टे पहले पीना चाहिए।

(९) पोदीना और सौंफ का अर्क आधी छटाँक मात्रा में लेकर उसमें चार रत्ती काला नमक और दस बूँद नाइट्रो म्यूरियाटिक् एसिड मिलाकर भोजन के बाद दो समय सेवन करने से अजीर्ण व पेट के अफरे में विशेष लाभ होता है।

(९) लवङ्गादि चूर्ण—लौंग, सोंठ, मिर्च, भुना हुआ सुहागा और खील इनको समभाग में चूर्ण कर रखना चाहिए। इसको भोजन करने के बाद दो माशा प्रमाण में सेवन करने से अजीर्ण की शान्ति तथा क्षुधा की वृद्धि होती है।

(१०) केवल हरड़ का चूर्ण दो माशा और सोंठ का चूर्ण दो माशा मिलाकर भोजन के बाद जल के साथ सेवन करने से अजीर्ण-रोग मेंविशेष लाभ होता है।

सूचना—यहाँ पर यह बताने की आवश्यकता है कि साधारणतः अजीर्ण में दो तरह के लक्षण होते हैं। एक प्रकार का अजीर्ण इस तरह का होता है कि जिसमें क़ब्ज़ अधिक होता है। दूसरा इस प्रकार का कि उसमें प्रायः अतिसार की शिकायत अधिक, अर्थात् प्रति दिन पतले दस्त अधिक आया करते हैं। जिस अजीर्ण में दस्त आते हों, उसमें हिंग्वाष्टकचूर्ण, लवङ्गादि, अग्निवर्द्धक आदि चूर्णों का व्यवहार करना चाहिए; और जिसमें क़ब्ज़ अधिक रहता हो, उसमें अधिकतर हरड़ के संयोग से बनी हुई औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। पुरातन अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य रोग में शास्त्रोक्त लवणभास्कर तथा अग्निमुख चूर्ण दोनों विशेष लाभकारी महौषधि हैं।

पुरातन अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य रोग में नृपतिवल्लभ, अग्नि-कुमार, अजीर्ण कण्टक तथा रामबाण आदि रसों का प्रयोग भी विशेष लाभदायक है। अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य रोग वाले को सदा भोजन करने के पहिले अदरक को सेंधा नमक के साथ मिलाकर खाना चाहिए।

संग्रहणी

ह रोग प्रायः अम्लपित्त, अजीर्ण तथा अति भारी, रुक्ष, चिकनी या अति शीतल चीजों के खाने से और अतिसार, हैजा या आन्त्रिक ज्वर के होने के बाद कुपथ्य सेवन करने से, परिपाक शक्ति व अन्त्र-प्रणालियों में विशेष दुर्बलता होनेसे उत्पन्न हो जाता है। इसको भाषा में प्रायः संग्रहणी-रोग कहते हैं।

संक्षिप्त लक्षण—संग्रहणी रोग में प्रति दिन दो-चार या पाँच-छः बार कच्चे मल के दस्त होते हैं और इसके साथ दुर्बलता दिन-दिन बढ़ती जाती है। कहीं ऐसा भी होता है कि रोगी के बहुत दिन क़ब्ज़ रह कर दस-पन्द्रह दिन या एक महीने के बाद दौरे से दस्त शुरू हो जाते हैं तथा पेट में दर्द होता है, किन्तु अतिसार में अनेक वर्ण के एक साथ बहुत अधिक कच्चे ही दस्त होते हैं।

साधारण व्यवस्था—यदि यह रोग अम्लपित्त के कारण या अम्लपित्त के साथ हो, तो इसमें अम्लपित्त में लिखित औषधि सेवन करनी चाहिए। पथ्यादि के सम्बन्ध में अजीर्ण, अग्निमान्द्य तथा अम्लपित्त-प्रकरण में लिखी हुई व्यवस्था का पालन करना चाहिए। यदि किसी को दूध न पचता हो, तो

उसके लिए काली मिर्च तथा जीरा भून कर मठे में मिला कर अधिक प्रमाण में पिलाना चाहिए। मठे का प्रयोग संग्रहणी रोग वाले के लिए बलदायक तथा रुचिकर पथ्य है। संग्रहणी में, जबकि रोगी की अवस्था अत्यन्त दुर्बल हो, जितना कम उपवास कराया जाय, उतना ही अधिक अच्छा है। इस रोग को आयुर्वेद में महारोग के नाम से लिखा है। इसमें साधारण औषधि-प्रयोग से सर्वथा शान्ति भी नहीं होती है। इसलिए इस रोग में प्रायः आयुर्वेदीय अच्छे अनुभवी वैद्य की चिकित्सा करानी चाहिए। साधारणतः निम्नलिखित प्रयोगों से चिकित्सा करनी चाहिए।

औषधि प्रयोग—(१) इस रोग में पूर्व-लिखित अग्निमान्द्य तथा अजीर्णाधिकार में लिखे हुए पुरातन अजीर्ण में उष्ण जल-प्रयोग, लवङ्गादि चूर्ण तथा अग्निवर्द्धक चूर्ण विशेष लाभदायक हैं।

(२) कच्चे बेल का गूदा छः माशा और सोंठ का चूर्ण एक माशा लेकर उसमें मिश्री या गुड़ मिलाकर प्रति दिन दो-तीन बार दिन में देने से संग्रहणी रोग में विशेष लाभ होता है।

(३) सोंठ, नागरमोथा, अतीस, धाय के फूल, रसौत, कुड़ा की छाल, बेल की गिरी, पाढ़, कुटकी इन सब औषधियों का बारीक चूर्ण बना ले। तीन माशा चूर्ण को शहद के साथ खाकर पीछे चावलों का धोया हुआ पानी पिए, इस प्रकार कुछ दिन करने से संग्रहणी, पुरानी पेचिश आदि रोग शीघ्र ही आराम हो जाते हैं।

(४) काली मिर्च एक तोला, सोंठ दो तोला, कुड़ा की छाल चार तोला सबको एक जगह वारीक पीस कर चूर्ण वना ले; फिर इस चूर्ण की तीन माशे मात्रा थोड़ा गुड़ और मठे के साथ मिला कर प्रति दिन सेवन करने से पुरातन अजीर्ण तथा संग्रहणी रोग में विशेष लाभ होता है।

(५) लवङ्गादि वटी—लौंग, सोंठ, काली मिर्च, भुना सुहागा और खील इन चार औषधियों का चूर्ण बनाकर इसको चित्रकछाल तथा चिरचिरा-जड़ की छाल या आँक की जड़ की छाल के क्वाथ में घोट कर चार-पाँच रत्ती की गोली वनाले। भोजन के वाद दोनों समय एक या दो गोली खाने से विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय संग्रहणी रोग में रसपर्पटी, महागन्धक योग, महाराज, नृपति वल्लभ, संग्रहणी-कपाट आदि रस अत्यन्त लाभप्रद हैं।

अम्लपित्त व अम्लशूल

ह रोग प्रायः विदग्धाजीर्ण (पित्ताजीर्ण), अग्निमान्द्य, भोजन के अपरिपाक होने से तथा खट्टी, भारी, तेज, गरम चीजों के खाने से उत्पन्न हो जाता है। इसमें अधिकतर मनुष्य को खट्टी, कड़वी, पीले रङ्ग की उलटी हुआ करती है, और खट्टी डकारें, कण्ठ में जलन, पेट में पीड़ा, शिर में चक्कर आते हैं।

साधारण व्यवस्था—इस रोग में सरसों का तेल, खट्टी चीजें—अचार-खटाई, भुने हुए चने आदि और खराब सड़े हुए घी में बनी हुई बाजार की चीजें न खानी चाहिए। इनके साथ यदि कफ-पित्तकारक मछली आदि का मांस, उड़द की दाल, दही आदि भी न खाय तो बहुत अच्छा है। अम्लपित्त-शूल में विशेष कर किसी चीज की दाल को न खाना चाहिए। अच्छे ताजे घी की बनी हुई चीजें सामर्थ्य के अनुसार खानी चाहिए।

अम्लशूल में वेदना अधिक होने पर दो-तीन दिन तक रात्रि को दोनों समय दूध में खीलों को पकाकर पतला-पतला खाना

अच्छा है। अम्लपित्त में विशेषकर नीम, करेला, मेथी आदि तिक्त रस वाली तरकारियाँ लाभदायक हैं।

अम्लपित्त में अधिक वेदना होने पर बहुत औषधियों का सेवन करना अच्छा नहीं है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अम्लपित्त की वेदना साधारण अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य की औषधियों से शान्त न होकर उलटी बढ़ जाया करती है; किन्तु पथ्यपूर्वक प्रति दिन प्रातःकाल या दोनों समय भोजन के पहले गरम जल थोड़ा-थोड़ा करके पीने से विशेष लाभ होता है। किसी-किसी के लिए प्रातःकाल उठने के समय ठण्ढा वासी पानी पीना अधिक हितकारक होता है।

औषधि—(१) हरड़ तथा सोंठ को समभाग में सूक्ष्म चूर्ण करके रख ले। फिर इसको प्रति दिन भोजन के बाद दो माशा और बराबर की मिश्री मिलाकर जल के साथ सेवन करे। इससे गले की जलन तथा पेट की जलन आदि तत्काल शान्त हो जाती है।

(२) नारियल के मुँह में छेद करके उसमें समभाग अजवायन व सेंधा नमक भरदे और नारियल का मुँह बन्द करके कपड़-मिट्टी कर दे। इसके बाद उसे अग्नि में जलाकर कपड़-मिट्टी को अलग करके नारियल के साथ सबको पीस कर चूर्ण करले। भोजन के बाद प्रति दिन दो माशे की मात्रा में सेवन करने से अम्लपित्त रोग शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

(३) नारियल की जटा की भस्म, सोड़ा और सौंफ़ इनको समभाग में चूर्ण कर ले। इस चूर्ण को प्रति दिन भोजन के बाद

दो माशे की मात्रा में खाने से अम्लपित्त के रोग में विशेष लाभ होता है।

(४) दशाङ्ग क्वाथ—अडूसे की छाल, नीम-गिलोय, पित्त-पापड़ा, नीम की छाल, चिरायता, भँगरा, हरड़, आमला, बहेड़ा, पटोलपत्र इन सब औषधियों को कूटकर दो तोला का क्वाथ बना कर ठण्ढा होने पर छः माशा मिश्री मिला कर प्रातःकाल या दोनों समय पीना चाहिए। इस क्वाथ से पुराना अम्लपित्त या अम्ल-शूल रोग शान्त हो जाता है।

(५) पञ्चनिम्बादि चूर्ण— नीम की छाल, पत्ते, फूल, जड़ तथा फल प्रत्येक को आधा-आधा तोला और विधारे के बीज आधी छटाँक बारीक चूर्ण करके पाँच छटाँक जौ का सत्त मिला कर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को प्रति दिन दो बार दो-तीन माशा के प्रमाण में समभाग मिश्री या शहद के साथ खाकर पीछे से ठण्ढा जल पीना चाहिए। इसके द्वारा अम्लपित्त व अम्लशूल और उससे उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के चर्म-रोग शान्त हो जाते हैं।

पुरातन अम्लपित्त में शास्त्रोक्त शङ्खवटी तथा धात्रीलोह अत्यन्त उपकारी महौषधि हैं। इनसे प्रायः कठिन से कठिन अम्ल-पित्त रोग शान्त हो जाता है।

हैज़ा

ह एक प्रकार की महा भयङ्कर मरी की तरह फैलने वाली व्याधि है। जब इसका प्रकोप होता है, तो गाँव के गाँव और शहर के शहर उजड़ जाते हैं। इसको हरेक मनुष्य भली-भाँति जानता है। इसके उत्पत्ति के विषय में बहुतों का यह विचार है कि यह आयुर्वेद में लिखी हुई अजीर्ण से उत्पन्न होने वाली विषूचिका है। इस छोटी सी पुस्तक में इस बात का पूर्ण विस्तार न कर यहाँ केवल यही बताना चाहते हैं कि आयुर्वेदोक्त विषूचिका रोग अजीर्ण से उत्पन्न होता है; तथा प्रायः हैजे की तरह प्राण-नाशक नहीं है! किन्तु हैजा एक प्रकार के विषैले कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाला एक आगन्तुक (आकस्मिक) रोग है। इसकी अच्छी रीति से चिकित्सा न होने पर प्रायः मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। इस रोग में विषैले जीवाणु (Comma Bacilli) भोजन तथा पीने के जल आदि के साथ पेट में जाकर शरीर के रक्त आदि में स्थित शुद्ध शक्ति-सञ्चारक जीवाणुओं को कमजोर या नष्ट कर देते हैं, तब इस प्रकार की व्याधि पैदा होती है।

संक्षिप्त लक्षण—एकाएक इस रोग में पानी की तरह पतले दस्त तथा वमन होना शुरू हो जाता है और उन दस्तों

तथा उलटियों का रङ्ग पहले-पहल चार-पाँच या एक-दो वार के वाद चावल-धोए पानी या भात के माँड़ की तरह होता है। वहुत सी जगह इसमें दस्त और वमन दोनों होते हैं; परन्तु कहीं पर केवल दस्त ही होते हैं अथवा पहले दस्त होकर पीछे उलटी भी शुरू हो जाती है। रोगी एकदम ढीला और कमज़ोर हो जाता है। उसकी आँखें भीतर को धँसी हुई, तथा हाथ-पाँव ठण्ढे हो जाते हैं। अनेक रोगियों के हाथ और पाँवों में वाँयटे तथा पेट में वड़ा भारी दर्द होता है। दस्त और उलटी के वन्द हो जाने पर प्रायः रोगी की दाह-तृष्णा वढ़ जाती है। नाड़ी की गति क्षीण तथा मन्द पड़ जाती है, शरीर सम्पूर्ण ठण्ढा हो जाता है। धीरे-धीरे इस अवस्था के साथ आवाज़ और नाड़ी वन्द हो जाती है। ऐसी अवस्था में योग्य चिकित्सा न होने पर कुछ ही घण्टों के वाद रोगी के प्राण निकल जाते हैं।

उपदेश—हैज़े का सन्देह होने पर रोगी को उठ कर वाहर न जाने देना तथा ठण्ढे जल से हाथ-पाँव आदि न धोने देना चाहिए। जहाँ तक हो सके, हाथ-पाँवों को गरम रखना चाहिए और पीने को जल अधिक प्रमाण में देना चाहिए। यदि उलटी अधिक हो, तो थोड़ा-थोड़ा ठण्ढा पानी वार-वार देना चाहिए; किन्तु इच्छानुसार एक साथ ही अधिक पानी न देना चाहिए। शरीर की कमज़ोर तथा ढीली हालत में खूव ठण्ढा जल पिलाना चाहिए। उसमें सेंधा नमक या परमागनेट पोटास या दो-चार वूँदें नीवू के रस की मिला देना अच्छा है। जहाँ तराई की

जगह है, वहाँ लोगों को पूर्व-लिखित रीति के अनुसार जल पका कर पीना चाहिए। इस रोग में बर्फ़ भी दे सकते हैं; किन्तु अधिक देना अच्छा नहीं है।

हाथ-पैरों को गरम रखने के लिए रबड़ की थैली में गरम पानी भर कर सेंकना या चार लम्बे-चौड़े कम्बल या फ़लालैन के टुकड़ों को गरम जल में निचोड़ कर हाथ-पैरों में लपेट देना चाहिए; और उनके ठण्ढे हो जाने पर दूसरे टुकड़ों को उसी तरह लपेट देना चाहिए। यह क्रिया बराबर हाथ-पैरों के गरम होने तक करनी चाहिए।

यह बात यहाँ पर स्मरण रखने की है कि इस रोग में रक्त में जल का हिस्सा बहुत कम हो जाता है, जिससे रोगी को भयङ्कर तृष्णा और हाथ-पैरों में खाले (ऐंठन) पड़ने लग जाते हैं; और रक्त का सञ्चार बहुत कम अंश में होता है। इसलिए इसमें किसी तरह (पिचकारी आदि द्वारा) अधिक प्रमाण में जल प्रवेश करना ही मुख्य चिकित्सा है। इस रोग में जल न देना अत्यन्त हानिकारक है।

यदि ठण्ढ व वर्षा का मौसम न हो, तो घर के सब दरवाज़े और खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए। किन्तु घर में गन्धक तथा कोयलों का जलाना अत्यन्त हानिकारक है।

इस रोग में दस्त तथा वमन के बन्द होने पर भी जब तक नाड़ी की गति ठीक और पेशाब न हो जाय, तब तक विशेष आशङ्का रहती है; और तब तक रोग के किसी क्रम से निश्चिन्त

या बेफिक्र न होना चाहिए, जब तक कि रोगी का पथ्य ठीक न पच जाय। रोगी को जिस तरह नींद आए, वह उपाय करने चाहिए। नींद आने पर रोगी को जगाकर कोई औषधि न देनी चाहिए।

किसी प्रकार का दस्त और विकृति रहने पर रोगी को कोई पथ्य न देना चाहिए। केवल जल अधिक प्रमाण में देना चाहिए। जब उसे पेशाब हो जाय, तब पतले अरारोट के पानी में दो-चार बूँद नीबू का रस तथा सेंधा नमक मिलाकर दो-तीन दिन तक रोज़ तीन-चार बार देना चाहिए। इसके बाद साबूदाना और भात का माँड़ आदि लघु पथ्य देकर शरीर के हर हालत में स्वस्थ होने पर धीरे-धीरे भात देना चाहिए; किन्तु पतली तथा दस्तावर चीजें न देनी चाहिए।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि हैजा एक भयानक संक्रामक रोग है, इस वास्ते इसके रोकने के लिए पूर्व रोग-प्रतिषेध-प्रकरण में वर्णित नियमों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

औषधि—रोग की पहली ही अवस्था में एकदम वमन व दस्तों को बन्द करने का प्रयत्न न करना चाहिए; क्योंकि अशुद्ध मल जब तक न निकल जाय, तब तक यह बन्द नहीं हो सकते। यदि बन्द भी हो जायँ, तो और दूसरी व्याधि पैदा हो जाती है। इसलिए ऐसी दशा में निम्नलिखित किसी एक औषधि का प्रयोग करे :—

(१) हरा अपामार्ग या आक अथवा पुनर्नवा की जड़ छः माशा और पाँच-छः कालीमिर्च दोनों को पीस तथा एक छटाँक जल में घोल कर आध-आध घण्टे के बाद थोड़ा-थोड़ा पाँच-सात बार पिलाना चाहिए।

(२) कपूर दो रत्ती, चूना आठ रत्ती, सोंठ तीन माशा इन तीनों को लेकर दस मिनिट तक खरल में खूब अच्छी तरह घोट आठ मात्रा बना ले। इस औषधि को पन्द्रह मिनिट या आध-आध घण्टे के अन्तर से सेवन करने पर विशेष लाभ होता है; परन्तु यह औषधि दस्त और उलटी बन्द होने पर न देनी चाहिए।

(३) दशमूल का काढ़ा बना करके उसमें आधी छटाँक शुद्ध एरण्ड का तेल और आधी छटाँक काग़ज़ी नीबू का रस मिला कर चाय या दूध की तरह दो बर्तनों में उबाल कर रखले। वमन का वेग तेज़ न होने पर रोग की पहली अवस्था में यह औषधि दो-तीन बार खानी चाहिए। इससे विषैले कीटाणु सब बाहर निकल जाते हैं।

(४) वमन के अधिक होने पर ज्वर-चिकित्सा में लिखी हुई औषधियों का प्रयोग करना चाहिए, अर्थात् काग़ज़ी नीबू या बर्फ़ को चूसना या थोड़ा-थोड़ा गर्म जल पीना चाहिए।

(५) पेट में अधिक पीड़ा होने पर ताज़ा गोमूत्र या काँजी में फ़लालैन के कपड़े को निचोड़ कर पेट के ऊपर रख कर स्वेद देना चाहिए।

(६) हाथ-पाँव में खाला या ऐंठन अधिक होने पर गर्म

चालू की पोटली को कांजी में भिगोकर स्वेद देना चाहिए, अथवा पुनर्नवा की जड़, सिरस का तेल, कुड़े का चूर्ण और सेंधा नमक मिलाकर जल के साथ गर्म करके मालिश करनी चाहिए। गर्म जल में नमक मिलाकर उसकी धार हाथ-पांवों में देने से भी विशेष उपकार होता है; किन्तु आगे लिखी हुई "लवण-जल-चिकित्सा" के करने पर इन उपायों की आवश्यकता नहीं है।

(७) हिचकी अधिक आने पर "हिक्का-चिकित्सा" में लिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए, अथवा मोर के पङ्ख के अगलाचन्दा को भस्म करके तीन-चार रत्ती लेकर शहद के साथ चटाना चाहिए या नीबू का सत्त एक रत्ती और रस-सिन्दूर एक रत्ती मिला कर शहद के साथ खिलाना चाहिए।

(८) रोगी की नाड़ी अत्यन्त क्षीण हो जाने पर फ़लालैन को गर्म करके सेंक देना चाहिए। जल में कुछ सेंधा नमक मिला कर पिलाना तथा योग्य वैद्य की चिकित्सा करानी चाहिए। हैज़े के विषय में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि रोग की पहली हालत में ही योग्य वैद्य की चिकित्सा करानी चाहिए। ऐसी अवस्था में ही यह पूर्वलिखित औषधादि का ज्ञान होना अत्यन्त अच्छा है। योग्य चिकित्सक के न मिलने पर इस ग्रन्थ में लिखे हुए प्रयोगां द्वारा भी चिकित्सा करने से रोगी के बचने की आशा हो सकती है; किन्तु मूर्ख व कुपढ़ वैद्य की चिकित्सा से रोगी कभी नहीं बच सकता।

(९) शरीर के अत्यन्त ठण्ढा हो ज़ाने पर तेज़ खिंचे हुए

मृत सञ्जीवनी सुरा, आसवया, ब्राण्डी पिलानी चाहिए। आयुर्वेदोक्त मकरध्वज, कस्तूरी भैरव, मल्ल सिन्दूर या ताला सिन्दूर आदि का प्रयोग भी तत्काल फल दिखलाता है।

(१०) मूत्र न खुलने पर दस्त और वमन के बन्द होने के बाद कमर में गर्म वालू की काँजी गोमूत्र में भिगो कर स्वेद देना चाहिए; और वस्ति के ऊपर शोरे के जल की पट्टी बाँधनी चाहिए, अथवा गर्म जल में फ़लालैन को निचोड़ कर उसमें दो-चार बूँदें तारपीन के तेल की डाल कर कमर में स्वेद देना चाहिए।

सूचना—हैज़े में नाड़ी लुप्त होने पर हाथ-पाँव के ठण्ढे रहने और आवाज़ के बैठ जाने पर आजकल की आविष्कृत ऐलोपैथिक "लवण-जल-चिकित्सा" द्वारा हज़ारों रोगियों के प्राण बचते हैं। इस चिकित्सा में साधारणतः हाथ की कुहनी पर की शिरा को काट कर उसमें एक सेर से दो सेर तक गर्म लवण-जल प्रवेश किया जाता है। यह चिकित्सा शीघ्र ही फलप्रद तथा अनेक बार अनुभव की हुई है।

बहुत मनुष्यों का यह विचार है कि हैज़े की असली चिकित्सा आयुर्वेद व डॉक्टरी दोनों में ही नहीं है; परन्तु उनका यह विचार ठीक नहीं है; क्योंकि इस समय जो उक्त लवण-जल-चिकित्सा प्रचलित हो रही है, उससे और इस पुस्तक में लिखे हुए प्रयोगों द्वारा सैकड़ों मनुष्यों की जान बचती है।

पथ्य—रोगी को पहली हालत में किसी प्रकार का भोजन न देना चाहिए; और ठण्ढा जल या परमागनेट पोटास मिला हुआ

जल देना चाहिए। जब दस्त व उलटी बन्द हो जाय और पेशाब उतरने लगे, तो थोड़ा-थोड़ा दूध गर्म करके चाय के साथ दे और अरारोट, साबूदाना, मुनक्का आदि को रोगी की अवस्थानुसार तथा वैद्य की आज्ञानुसार देना चाहिए।

इस रोग में पाचन-शक्ति अत्यन्त खराब हो जाती है, इसलिए रोग से मुक्त होने पर कई दिन तक, जबकि पाचन-शक्ति बिलकुल ठीक न हो जाय, पथ्य से रहने की आवश्यकता है। बहुधा इस रोग के बाद कुपथ्य सेवन करने से मनुष्यों को संग्रहणी की बीमारी पैदा हो जाती है। इस वास्ते इसमें पूर्ण शक्ति होने तक हलकी और जल्द पचने वाली चीजों को खाना चाहिए।
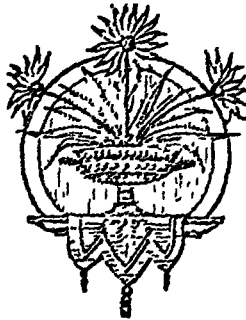
बवासीर

ह एक प्रकार का बहुत भयानक रोग है। एक बार होने के बाद इसका छूटना कठिन हो जाता है। इसको आयुर्वेद में "अर्श" इस वास्ते लिखा है कि इसके होने पर मनुष्य अत्यन्त दुखी हो जाता है। जैसे किसी शत्रु के पैदा हो जाने पर मनुष्य का जीवन अत्यन्त सङ्कटमय हो जाता है, और उसको हर समय किसी न किसी बात का डर बना रहता है, इसी तरह इस रोग के होने पर मनुष्य के पीछे एक के बाद एक नई व्याधि उत्पन्न होकर शरीर का नाश कर देती हैं।

विशेषकर यह रोग सदा बैठे रहने से, उखुड़ू होकर बैठने या विशेप झकोरने वाली ऊँट, बैलगाड़ी आदि की सवारी से, अपान-वायु, दस्त, पेशाब आदि के वेगों के रोकने से, भारी व विशेप चिकनी चीज़ों के खाने से, अधिक खुश्क अन्न के खाने से, धूप में अधिक घूमने से, मद्यपान और ठण्ढे जल के विशेप प्रयोग से अपानवायु बिगड़ कर गुदा की वलियों (आटें) में मल को रोक कर वलियों को ढीला और रक्त-सञ्चार के अभाव से मुर्दार करने

के कारण पैदा हो जाता है। इस वास्ते अर्श-रोग वाले को उपरोक्त आहार-विहार का अभ्यास न करना चाहिए। लिखा है:—

वेगावरोधः स्त्रीपृष्ठयान मुत्कटकासनम् ।
यथास्वं दोपलं चान्न मर्शसः परिवर्जयेत् ॥

अर्थात्—अर्श वाले को वात आदि वेगों का रोकना; मैथुन करना; घोड़े, ऊँट, हाथी आदि की सवारी करना; उखुड़ बैठना और वातादि दोषों को बढ़ाने वाले मद्यपान का सेवन न करना चाहिए।

इसकी तथा अग्निमान्द्य रोग की चिकित्सा प्रायः एक ही प्रकार की होती है। इसमें शीघ्र पचने वाला हलका, चिकना, दस्तावर अन्न और नियमित व्यायाम करना और तेल-सरसों आदि तीक्ष्ण चीज़ों को न खाना चाहिए। इन तीन बातों का पालन अर्श रोग में विशेषकर हितकारक है। अर्श वाले के लिए शाकों में वथुवा, पालक, परवल आदि और फलों में पपीता, सेव, मुनक़्क़ा, अनार आदि विशेष उपकारी हैं।

अर्श रोग प्रधान रूप से दो प्रकार का होता है। पहला शुष्कार्श (जिसमें ख़ून न पड़े)*, दूसरा रक्तार्श (जिसमें ख़ून पड़े); इन्हीं दो ववासीरों को लोग क्रम से वादी तथा ख़ूनी ववासीर कहते हैं।

चिकित्सा — इस रोग में इस प्रकार की औषधि तथा पथ्य करना चाहिए, जिससे वायु की गति ठीक हो और अग्नि की वृद्धि तथा रोज़ दस्त साफ़ आया करे। नीचे लिखे हुए वहुत से उत्तमोत्तम योग काम में लाने चाहिए :—

(१) खजूर नग ५, किशमिश एक तोला इन दोनों को प्रति दिन गर्म दूध में पका लेना चाहिए। इस दूध को छानकर पीने से दस्त साफ़ आता है और रोगी की ताक़त भी बढ़ती है।

(२) हरड़ का मुरब्बा, गुलकन्द (जो बाजार में गुलाब के फूल और मिश्री का बनाया हुआ बिकता है), पका पपीता आदि चीजें प्रति दिन योग्य प्रमाण में सेवन करनी चाहिए। इनसे कोष्ठ साफ़ रहता है और बवासीर बढ़ने नहीं पाती।

(३) छोटी जङ्गी हरड़ों को घी में भूनकर चूर्ण करके उसका आधा विड् नमक मिला कर चूर्ण करले; फिर इस चूर्ण को तीन माशे शाम को सोते समय गर्म जल के साथ सेवन करें। इससे वायु-अनुलोम (सीधा) और कोठे की शुद्धि होती है।

(४) काले तिलां को भिगो कर उनका छिलका उतार कर एक तोला प्रमाण में पीसकर उस लुगदी में मक्खन और मिश्री मिलाकर प्रातःकाल सेवन करने से रक्तार्श अर्थात् ख़ूनी बवासीर में विशेष लाभ पहुँचता है।

(५) संग्रहणी रोग की तरह इस रोग में भी छाछ विशेष लाभ-दायक है। छाछ में भूना हुआ जीरा और सेंधा नमक मिलाकर दिन-प्रतिदिन मात्रा को बढ़ाता हुआ रोगी को जितना पच सके उतना देता रहे।

(६) नागकेशर दो माशे, मिश्री दो माशे, मक्खन छः माशे तीनों को मिला कर प्रति दिन प्रातःकाल खाने से ख़ूनी बवासीर शान्त हो जाती है।

(७) सेंधा नमक, चित्रक, इन्द्रजौ, करञ्ज की छाल, वकायन की छाल या निबौरी इनका समभाग में चूर्ण बना कर छः माशे चूर्ण लेकर छाछ के साथ प्रातःकाल सात दिन पीने से ववासीर नष्ट हो जाती है।

(८) ज़मीकन्द सोलह तोला, चित्रक आठ तोला, सोंठ दो तोला, मिर्चकाली एक तोला ले। पहले ज़मीकन्द को आग में खूब आलू की तरह पका ले; वाद में उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबसे दूना पुराना गुड़ मिलाकर रख ले। इसे प्रति दिन छः माशे गर्म जल के साथ खाने से वादी की ववासीर शान्त हो जाती है।

(९) धनिया, सनाय, अमलताश का गूदा, भुनीसोंठ, आलू-बुखारा और तिन्तड़ीक प्रत्येक दो तोला लेकर दो सेर जल में पकावे, आध सेर बाक़ी रहने पर छानकर उसमें आध सेर चीनी मिला कर फिर पका ले। पक कर गाढ़ा होने पर उतार ले। यह अवलेह कोष्ठ-शुद्धि के लिए वहुत अच्छा है। इसको अवस्थानुसार रात्रि में छः माशे या एक तोला तक खा सकते हैं।

(१०) पहले पके भिलावे लेकर उनकी टोपी उतार कर उनको ईंट के चूर्ण में घिस कर गर्म जल से धो डाले और उनको एक दिन तक ज़मीन में गाड़ कर निकाल के धोकर फिर चूने के पानी में डाल दे। दो-तीन घण्टे के बाद धो डाले। धोने से शुद्ध हो जायँगे। ऐसे शुद्ध भिलावे छः माशा और धोए हुए काले तिल एक तोला इन दोनों के बराबर मिश्री मिलाकर प्रति दिन प्रातःकाल

जल के साथ खाना चाहिए। इस योग से अर्श रोग में विशेष उपकार व अग्नि की वृद्धि होती है।

(११) हरे कमल के पत्ते एक तोला, नागकेशर छः माशे इन दोनों को बकरी के दूध में पीस और मिश्री मिलाकर शर्बत बना, प्रातःकाल पीना चाहिए। इससे बवासीर का ख़ून शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

(१२) भाँग चार तोला और अफ़ीम तीन माशा दोनों को जल में बट कर टिकिया बना ले, इस टिकिया को गर्म करके दो-दो घण्टे के बाद गुदा में बाँधने से बवासीर का दर्द बन्द हो जाता है।

अग्निमान्द्य रोग में कहे हुए प्रयोगों द्वारा बवासीर वाले को विशेष लाभ होता है। साधारण प्रयोगों से विशेष लाभ न होने पर निम्नलिखित चूर्ण सेवन करने से विशेष लाभ होता है :—

(१३) हरड़, सोंठ, पीपल, करञ्ज की छाल, सहजन की छाल, आक की जड़ की छाल, वायविड्ङ्ग, चित्रक इनको समभाग में लेकर चूर्ण कर ले, चूर्ण के बराबर मिश्री मिलाकर गर्म जल के साथ सेवन करने से अत्यन्त भूख लगती है तथा भोजन भी ख़ूब पचता है।

अर्श रोग की साधारण अवस्था में उपरोक्त चिकित्सा अत्यन्त लाभदायक है; किन्तु यदि बवासीर में ख़ून बहुत निकलता हो, तो किसी योग्य वैद्य तथा डॉक्टर की चिकित्सा करनी चाहिए। क्योंकि पुरानी बवासीर के मस्से बिना शस्त्र-क्रिया के शान्त नहीं होते; इसलिए मस्सों को निकालने के लिए योग्य सर्जन से या

जयपुर के सरकारी अस्पताल में या लखनऊ में इसकी चिकित्सा करानी चाहिए। पैतृक (पिता-माता से आई हुई) बवासीर बिना शस्त्र-क्रिया के कभी शान्त नहीं होती। उसके लिए साधारण प्रयोगों का करना व्यर्थ है। साधारण प्रयोगों से केवल उसकी रुकावट ही होती है।

कोष्ठ-बद्धता या कब्ज़

ट में मल के रुकने अर्थात् दस्त साफ़ न होने को कोष्ठ-बद्धता या मलावरोध कहते हैं। साधारण भाषा में इसे क़ब्ज़ कहते हैं। पाचन-क्रिया में गड़बड़ होने से यह रोग होता है। स्वास्थ्य ठीक होने की अवस्था में दिन-रात के चौबीस घण्टों में दो बार मल त्याग किया जाता है। बहुतेरे लोग चौबीस घण्टे में एक बार ही पाख़ाने जाते हैं। कम मल त्याग करना, साफ़ दस्त न होना या नियम से अधिक बार पाख़ाने जाना, पाख़ाना जाने के बाद भी हाजत बनी रहना, मल त्याग करते समय अधिक ज़ोर लगाना, बहुत समय तक पाख़ाने में बैठे रहना और कष्ट-सहित शुष्क पाख़ाना होना आदि कोष्ठबद्धता या मलावरोध के लक्षण हैं। इस समय हमारे देश में प्रतिशत सत्तर मनुष्यों को थोड़ी-बहुत क़ब्ज़ की शिकायत अवश्य रहती है। अधिकांश रोगों का मूल कारण क़ब्ज़ या अजीर्ण ही होता है। इन कारणों के सिवाय क़ब्ज़ के प्रायः वेही कारण हैं, जोकि अर्श रोग के हैं।

साधारण व्यवस्था—कोष्ठ-बद्धता रोगमें प्रति दिन नियामत-रूप से व्यायाम, ठीक समय पर भोजन, स्नान और शौचादि तथा

उत्तम सेब, अनार, अङ्गूर, अमरूद आदि पके हुए फल अधिक प्रमाण में खाने चाहिए। इस रोग में बार-बार विरेचन लेना हानि-कारक है; किन्तु बार-बार विरेचन लेने की अपेक्षा वस्ति-कर्म कराना या नाभि-पर्यन्त जल में बैठना बहुत अच्छा है।

औषधोपचार—(१) प्रातःकाल उठकर धीरे-धीरे एक गिलास ठण्डा पानी पीना चाहिए।

(२) हरड़ या त्रिफला-चूर्ण प्रातःकाल या रात्रि के समय खाना चाहिए।

(३) गर्म जल में ओलिव ऑइल (Olive oil) चार ड्राम मिलाकर प्रातःकाल पीना चाहिए। गर्म जल में नीबू का रस थोड़ा सा नमक डाल कर प्रातःकाल पीना चाहिए, अथवा दूध में मुनक़्क़ा पकाकर पीना चाहिए। मीठी चीजें अधिक न खानी चाहिए; और अचार, चटनी गर्म मसाले आदि पदार्थ तथा चाय, काफ़ी, तमाकू आदि सब प्रकार के मादक पदार्थों का त्याग करना चाहिए। भोजन को खूब चबा-चबा कर खाना चाहिए! अर्श रोग में लिखे हुए पहले, दूसरे, तीसरे योगों का सेवन क़ब्ज़ के लिए अत्यन्त लाभदायक है। निम्नलिखित " ऋतु-हरीतकी " का सेवन भी अधिक लाभप्रद है। इसको विधि के अनुसार सेवन करने से अर्श व क़ब्ज़ दोनों ही रोगों में विशेष लाभ होता है; और शरीर नीरोग तथा बलवान् रहता है।

ऋतु-हरीतकी की सेवन-विधि—(१) वर्षाकाल में प्रति दिन

एक पकी हुई हरड़ थोड़ा सेंधा नमक मिला कर खानी चाहिए। इसी तरह शरद् ऋतु में चीनी के साथ, हेमन्त ऋतु में सोंठ के चूर्ण के साथ, शीतकाल या शिशिर ऋतु में पिप्पली-चूर्ण के साथ, वसन्त ऋतु में शहद के साथ और गर्मी के दिनों में गुड़ के साथ मिलाकर खानी चाहिए।

(२) ओलिव ऑइल मिले हुए गर्म या ठण्डे जल को मनुष्य की प्रकृति के अनुसार सेवन कराना चाहिए, अर्थात् गर्म पित्त-प्रकृति वाले को प्रातःकाल ठण्डा जल और शीत प्रकृति (वात-कफ) वाले को प्रति दिन तीन-चार बार गर्म जल पीना चाहिए।

(३) क़ब्ज़ वाले को प्रति दिन पपीता, अङ्गूर आदि फलों को अधिक उपयुक्त प्रमाण में खाकर रात्रि को चक्की के मोटे आटे की रोटी खाने से या लीची के खाने से प्रायः कोष्ठ शुद्ध रहता है। इसके सिवाय कोष्ठ बद्धता के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों को पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

कृमिरोग

सं
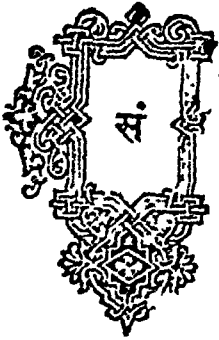
क्षिप्त लक्षण—अजीर्ण में भोजन करने से, मीठी, खट्टी, पतली चीजों के खाने से, गुड़ और पिट्ठी की चीजों से तथा दिन में अधिक सोने और व्यायाम के न करने से कृमि रोग हो जाता है। कृमि अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें से कई केंचुए और साँप की तरह लम्बे और कई पतले सूत के सदृश छोटे-छोटे होते हैं; अधिकतर छोटे ही कृमि देखे जाते हैं। बड़े कृमियों के उत्पन्न होने में हर समय जी मिचलाना, मुँह से पानी गिरना, नाक में खुजली, पेट में दर्द, भूख न लगना, दुर्बलता और अन्न का पाचन न होना आदि लक्षण देखे जाते हैं। बड़े कृमियों के उत्पन्न होने पर बच्चा प्रायः निद्रावस्था में दाँतों को किरकिराया करता है। छोटे कृमि बच्चों के ही अधिकतर होते हैं। प्रायः ये कृमि बच्चों के मल-द्वार के समीप ही रहते हैं; इसीलिए प्रायः बच्चों की गुदा में खाज हुआ करती है। इसके सिवाय बहुत से कृमि फीते या हुक्क की तरह होते हैं। इनको क्रम से टेपवार्म्स और हुकवार्म्स कहते हैं। इन सभी कृमियों की चिकित्सा निम्नलिखित रूप से करनी चाहिए :—

(१) खजूर के पत्तों का रस दो तोला, नीबू का रस दो माशा, शहद एक तोला इन तीनों को मिलाकर पाँच-सात दिन तक निरन्तर पीने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(२) तीन माशा पलास के वीजों का चूर्ण छः माशा शहद में मिलाकर प्रति दिन सेवन करने से कृमि-विकार दूर हो जाता है।

(३) ढाक के वीज, इन्द्रजौ, वायविड़ङ्ग, नीम की छाल और चिरायता इन औषधियों को समभाग लेकर चूर्ण वना ले; फिर इस चूर्ण को तीन दिन तक रात्रि में सोते समय दो-तीन माशा जल के साथ सेवन करने से तमाम कीड़े वाहर निकल आते हैं।

(४) केवल वायविड़ङ्ग के तण्डुलों के चूर्ण को दो माशा प्रमाण में लेकर शहद के साथ सेवन करने से कृमि-रोग में विशेष लाभ होता है। वायविड़ङ्ग के छिलके को निकाल कर भीतर के छोटे-छोटे वीजों का नाम वायविड़ङ्ग-तण्डुल है।

(५) मूसाकानी के पत्तों को पीस डाले और लुगदी में पिट्ठी मिलाकर पूए वना कर रख ले; फिर एक पूआ रोज खाकर उसके वाद काँजी अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और सेंधा नमक का चूर्ण गाढ़े मठे के साथ पीना चाहिए। इससे सब कृमि मर जाते हैं।

(६) ऊपर लिखे हुए प्रयोगों के सेवन करने से यदि कीड़े वाहर न निकलें, तो आधी छटाँक शुद्ध एरण्ड-तेल छटाँक भर गर्म दूध के साथ पिलाने से दस्तों के साथ मरे अथवा जीवित कृमि वहुत सरलता से वाहर निकल आते हैं।

(७) छोटे-छोटे कृमियों के लिए निम्नलिखित औषधियों का काथ बनाकर उसकी पिचकारी गुदा में देने से लाभ होता है:—

बावची एक तोला, पनवाड़ के बीज छः माशा, नीम की छाल छः माशा—इनको जौकुट करके आध सेर जल में पकावे और आध पाव बाक़ी रहने पर छः माशा सेंधा नमक मिला कर गुनगुना ही काँच की पिचकारी द्वारा धीरे-धीरे गुदा में लगाना चाहिए। प्याज़ का रस दो तोला और आध पाव साबुन का जल मिला कर पिचकारी देने से भी विशेष लाभ होता है।
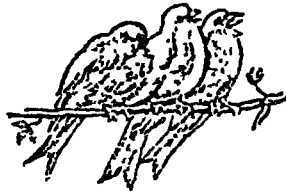
कफ, कास और स्वर-भेद

यों तो अनेक कारणों से कास (खाँसी) रोग पैदा होता है, तथापि उनमें से ठण्ढ का लगना, पुराना अजीर्ण तथा गले का रोग, वास-यन्त्र में व्रण-शोथ (Enflammation) ये प्रधान कारण समझे जाते हैं। गले के रोग में स्वर-यन्त्र के बड़े हो जाने तथा गले में छोटे-छोटे दाने या घाव हो जाने से इसकी उत्पत्ति हो जाती है। जिन कारणों से कास रोग उत्पन्न हुआ हो, उन्हीं कारणों को यथासम्भव दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। यह बात केवल कास के लिए ही नहीं, वल्कि अन्यान्य रोग भी जिन कारणों से पैदा हुए हों, उनको दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। कास रोग में इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए कि खाँसते समय कफ निकलता है या नहीं। यदि कफ-जन्य कास रोग हो, तो उसके लिए निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए—

(१) गुलबनफ्सा तीन माशा, गावजबाँ तीन माशा, मुलहटी तीन माशा, उन्नाब सात दाने, मुनक़्क़ा सात दाने, अञ्जीर दाना एक, कालीमिर्च सात दाने, जूफ़ा तीन माशा इन सबको जौकुट करके

आधा सेर पानी में पकावे ; आधा पाव रहने पर छान करके दोनों समय पीना चाहिए। इससे कफ की खाँसी दूर हो जाती है।

(२) मुलहटी, भारङ्गी, सोंठ, किशमिश, दालचीनी, कालीमिर्च प्रत्येक औषधि को चार-चार माशा मिला कर आधा सेर जल में पकावे। आधा पाव बाक़ी रहने पर छान कर दोनों समय पिए। इससे कफ की खाँसी शीघ्र दूर हो जाती है।

(३) अड्डूसे के पत्तों का रस एक तोला और छोटी पीपल का चूर्ण दो माशा, शहद के साथ दोनों समय चाटने से कफ की खाँसी में विशेष लाभ होता है।

(४) छोटी कटेरी दो तोला कूट कर आध सेर जल में पकावे। आधा पाव बाक़ी रहने पर छान कर उसमें छोटी पीपल का चूर्ण एक माशा मिला कर पीने से कफ-कास दूर होता है।

(५) यदि कफ छाती में चिपका हुआ मालूम हो, तो अदरक का रस और पुराना घी दोनों को मिला कर गर्म करके छाती में मालिश करनी चाहिए, अथवा जल को खूब गर्म करके आठ-दस बूँद तारपीन का तेल मिलाकर बफारा देना चाहिए। इससे रुकी हुई सर्दी से चिपका हुआ कफ सहज में ही निकलने लगता है।

(६) बहेड़े की मींगी दो तोला शहद के साथ पीस कर चटनी बना ले ; इस अवलेह के चाटने से खाँसी में दर्द नहीं होता।

(७) लौंग, कालीमिर्च, बहेड़ा एक-एक तोला और कत्था

तीन तोला इनको वारीक पीस कर और ववूल के काथ में घोंटकर चने के वरावर गोली वना ले। इन गोलियों को मुख में रखकर रस चूसने से क़फ की खाँसी में वहुत लाभ होता है।

(८) लौंग एक तोला, जायफल एक तोला, पीपल एक तोला, कालीमिर्च दो तोला, सोंठ सोलह तोला इनका वारीक चूर्ण कर डेढ़ पाव चीनी मिलाकर रख ले। प्रति दिन एक-दो माशा दो-तीन वार जल के साथ सेवन करने से खाँसी, ज्वर और अरुचि मिट जाती है।

(९) कफ की अधिकता के साथ खाँसी, श्वास और पसलियों में दर्द के होने पर दशमूल के एक माशा काथ को पीपल का चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए।

(१०) आधा पाव या तीन छटाँक गर्म जल को प्रति दिन चार-पाँच वार पीने से ज़ुकाम-खाँसी दूर होती है।

(११) आवाज़ के वैठने पर वच और लौंग या कुलञ्जन को हर समय मुँह में रखने से विशेष लाभ होता है।

यदि खाँसी के साथ प्रतिदिन ज्वर भी रहता हो, तो यक्ष्मा की आशङ्का हो जाती है जोकि कालान्तर में वहुत दुख पैदा कर देता है। वच्चों की छाती में ठण्ढ लगने से खाँसी के साथ श्वास तथा ज्वर हो, तो विशेष भय का कारण है। इस रोग में किसी योग्य वैद्य को वुलाकर चिकित्सा कराने की आवश्यकता है। ऐसी दशा में भी, जहाँ कि एकाएक खाँसी के साथ ज्वर तथा श्वास

वढ़ा हो, निमोनिया की विशेष आशङ्का रहती है। अतः योग्य वैद्य की चिकित्सा करानी चाहिए।

नूतन खाँसी के लिए पूर्व-लिखित सितोपलादि चूर्ण, चन्द्रामृत रस, तालीसादि चूर्ण, एलादि गुटिका आदि विशेष हितकारी हैं। किन्तु पुरातन खाँसी के लिए च्यवनप्राश, व्याघ्री हरीतकी और कण्ठकारि अवलेह आदि विशेष उपयोगी हैं।
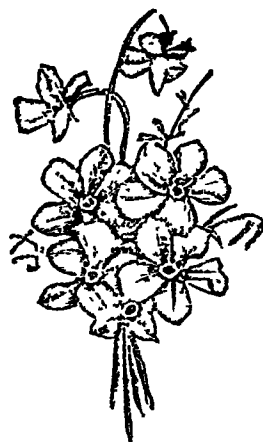
श्वास-रोग

अधिक रूक्ष चीज़ों के खाने से, विशेष दौड़ने के काम करने से, तेज तम्बाकू तथा सुल्फ़ा के पीने से, छाती में ठण्ढ लग जाने से तथा वात, मूत्र और पुरीष के वेग रोकने से प्राय: श्वास-रोग पैदा हो जाता है। यथार्थ में श्वास-रोग आरम्भ होने का समय बाल्यावस्था से लेकर पच्चीस-तीस वर्ष तक समझना चाहिए। वृद्धावस्था में भी प्राय: श्वास-रोग हो जाता है। इसका मुख्य कारण प्राय: हृदय की विकृति या हृदय का रोग है; किन्तु यहाँ पर साधारण श्वास-रोग की चिकित्सा ही लिखी जाएगी। हृदय-रोग (Heart Disease) की चिकित्सा अन्य रोगों की तरह योग्य वैद्य से करानी चाहिए।

यद्यपि यह रोग ठण्ढ या कफ से उत्पन्न होता है, तथापि इसमें अधिक गरमी की आवश्यकता नहीं है; किन्तु कफ को तर करने के लिए साधारण रूप से स्नानादि अवश्य करना चाहिए। श्वास की वृद्धि प्राय: ठण्ढ के दिनों तथा रात्रि में अधिक होती है, इसलिए इस रोग में रात्रि के समय खील को पका कर दूध तथा दूध का साबूदाना या मूँग का यूप स्नेहलवणयुक्त आदि लघु भोजन देना चाहिए। श्वास-रोग विशेष रूप से श्वास-नली में

विकृति आने से उत्पन्न होता है ; और इसका एक दूसरा कारण पाकाशय की विकृति भी है। इस वास्ते इस बात का विशेष ध्यान रहे कि किसी प्रकार का अजीर्ण न हो। ऐसा आहार-विहार करना चाहिए कि जिससे पाकाशय में विकृति न होने पावे।

ओषधि-प्रयोग—(१) धतूरे का पञ्चाङ्ग (अर्थात् फल, फूल, शाखा, जड़ और पत्ते) का चूर्ण कर ले, फिर इस चूर्ण को थोड़ा सा आग में डाल कर धुआँ लेने से अथवा तम्बाकू या सिगरेट की तरह पीने से प्रबल श्वास का वेग उसी समय बन्द हो जाता है।

(२) मिट्टी के दो शकोरों को लेकर उनमें मोर के पङ्ख के चन्दक रख के दोनों के ऊपर कपड़-मिट्टी चढ़ाकर सुखा ले; सूखने पर हलके पुट में अन्तर्धूम के साथ जला ले और बाद में इसकी चार रत्ती मात्रा और बराबर का पिप्पली चूर्ण मिला कर शहद के साथ प्रति दिन दो बार सेवन करे। यह प्रयोग श्वास-रोग के लिए विशेष उपयोगी है।

(३) बेल तथा अडूसे के पत्ते, भारङ्गी, कुड़ाछाल, जटामासी और छोटी कटेरी इन सबको समभाग में दो-दो तोला लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाले, फिर इसमें पीपल का चूर्ण एक माशा मिलाकर सेवन करने से श्वास-रोग को विशेष लाभ होता है।

(४) बेल, अरलु, पाठल, जम्भारी की छाल या जड़, अरनी, छोटी कटेरी, भारङ्गी और हरड़ इन आठ ओषधियों को समभाग में मिला कर दो तोला का विधिपूर्वक काथ बनाकर प्रति दिन एक या दो बार खाली पेट पीने से श्वास-रोग में विशेष लाभ होता है।

(५) काकड़ासिंगी, पीपल, भुईंआमला, गिलोय, सोंठ इन औषधियों को समभाग मिलाकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पीने से श्वास-रोग में विशेष उपकार होता है। इस क्वाथ के जीर्ण होने पर इन्हीं औषधियों से बनाई हुई पेया भी पीनी चाहिए।

(६) पीपल, पीपलामूल, हरड़, वायविड़ङ्ग, चित्रक छाल इनको समभाग में लेकर जलके साथ बारीक पीस कर एक घी वाले मिट्टी के बर्तन में लेप कर दें, सूखने पर उसमें मठा भर दे। एक महीने बाद उस मठे को पीने से अग्नि बढ़ती है और श्वास तथा कास-रोग शान्त होते हैं।

पथ्य—श्वास-रोग वाले को प्रायः शालि या साठी के चावल, गेहूँ, जौ, मूँग और कुल्थी आदि अन्न खाने चाहिए। इसके सिवाय इसमें वात-कफनाशक, गर्म वायु को ठीक लाने वाले, विशेष कर वात को शान्त करने वाले स्निग्ध, उष्ण पदार्थ सेवन करने चाहिए।

इस रोग में शास्त्रोक्त कनकासव, श्वासकुठार, कनकभैरव रस, च्यवनप्राश आदि सेवन करने चाहिए।

प्लेग

—:::—
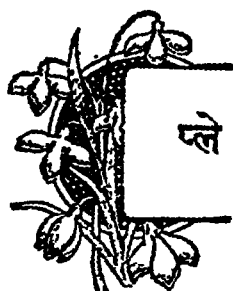
प्लेग यद्यपि कई प्रकार का होता है; परन्तु हमारे देश में ग्रन्थि वाला प्लेग ही अधिक देखने में आता है।

साधारण लक्षण—अधिक तेज़ ज्वर, चित्त में भ्रम, खिन्नता और सन्निपात रहता है। यदि रोगी जीवित रहें, तो कभी-कभी शरीर के भीतर रुधिर भी बहने लगता है। बहुत बड़ी-बड़ी गिल्टियाँ दूसरे या तीसरे दिन बग़ल या जाँघ में निकल आती हैं; और कभी फेफड़ों पर भी असर हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस रोग और निमोनिया में भेद को पहिचानना कठिन हो जाता है।

यह रोग एक प्रकार के कीटाणुओं से पैदा होता है, जो इतने कोमल होते हैं कि किसी प्राणधारी के शरीर का आश्रय लिए बिना कहीं जीवित नहीं रह सकते। इस रोग के फैलने पर यह देखा गया है कि पहले चूहे बहुत मरते हैं; क्योंकि प्लेग चूहों का असली रोग है। यह रोग चूहों से पिस्सुओं द्वारा मनुष्यों को लग जाता है। इसलिए उन दिनों चूहों के रहने वाले स्थानों की सफ़ाई और उनके भगाने का उपाय करना चाहिए। इसके लिए

रोग-प्रतिषेध में वर्णन किए हुए नियमों का पूर्णरूप से पालन करना चाहिए।

चिकित्सा—इस रोग में मनुष्य का हृदय शक्ति-हीन होने के कारण हृदय के बल को कम करने वाली और पसीना लाने वाली फ़िनास्टीन आदि औषधियाँ न देनी चाहिए। केवल दस्तावर औषधियाँ देनी चाहिए। जहाँ तक हो सके रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिए। गाँठ के ऊपर आक का दूध मिलाकर जमालगोटे का तीक्ष्ण लेप न करना चाहिए। गाँठ को कच्ची दशा में चीरना और अधिक सेंकना हानिकारक है; क्योंकि इन उपायों से गाँठ की सूजन बढ़ जाती है और रोगी को बड़ा कष्ट होता है। ज्वर के अधिक बढ़ जाने पर शमन-क्रिया और शिर में बर्फ की थैली रखना चाहिए। हृदय की गति को बलवान् बनाने के लिए नमक मिला हुआ थोड़ा-थोड़ा गुनगुना पानी देना चाहिए। हृदय की गति मन्द होने पर द्राक्षासव, दशमूलासव या अभ्रक-भस्म, मकरध्वज आदि बलदायक औषधियाँ देनी चाहिए। श्वास-कष्ट होने पर छाती में नारायण तेल की मालिश करनी चाहिए। मलावरोध में एरण्ड का तेल देना चाहिए। रोगी को दूध, बादाम का जल, चावलों का माँड़ अथवा सोडा मिलाकर दूध देना चाहिए। गाँठ को धतूरे के पत्तों से उबाल सेंके। लोवान, कपूर, एलुवा और कूट इनको पीस कर गाँठ पर लेप करे या चित्रक अथवा गरम गोबर का लेप तथा सेंक करे। यदि गाँठ में अधिक कष्ट हो, तो अलसी की पुलटिस से सेंके। पसीना अधिक

आने पर राख और अजवायन मिलाकर शरीर पर मले। पेशाब के रुक जाने पर पेड़ू और पीठ को तेल मल कर सेंकना चाहिए अथवा उसारे रेवन को घिसकर पेड़ू पर लगाना चाहिए। तृष्णा अधिक होने पर वर्फ़ देना चाहिए।

अब तक इस रोग की कोई अनुभूत चिकित्सा नहीं ज्ञात हो सकी है। इसलिए विधिपूर्वक लक्षणों के अनुसार चिकित्सा और उत्तम प्रकार से परिचर्या करने से बहुत-कुछ लाभ हो सकता है। यह एक भयङ्कर रोग है, इसलिए इसके उत्पन्न होते ही किसी योग्य वैद्य या डॉक्टर से चिकित्सा करानी चाहिए।

गठिया
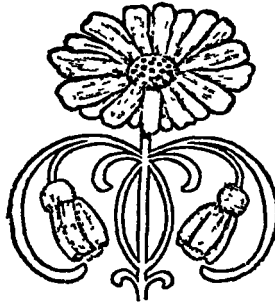
यह रोग प्राय: मिथ्याहार तथा विहार के करने से, व्यायाम-कसरत के न करने या भारी, चिकनी चीज़ों के खाने से, अग्नि के मन्द पड़ने और आम के बढ़ने के कारण पैदा होता है। आतशक (गर्मी) तथा सूज़ाक के कारण भी यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें ज्वर के साथ जोड़ों में दर्द तथा अन्न का अपरिपाक और शरीर में स्थान-स्थान पर सूजन आदि लक्षण होते हैं। इसी रोग को ग्रामों में गठिया कहते हैं।

अधिक ज्वर के साथ सम्पूर्ण शरीर में वायु का दर्द हो, तो छोटे-मोटे साधारण औषधि-प्रयोगों पर ध्यान न देकर किसी सुयोग्य वैद्य की चिकित्सा करानी चाहिए। यदि गर्मी और सूज़ाक के कारण यह रोग उत्पन्न हुआ हो, तो उसमें चोबचीनी को दूध के साथ पका कर पीना चाहिए या रक्तशोधक औषधियों का क्वाथ या महानन्तारिष्ट का सेवन करना चाहिए। इसके सिवाय साधारण खान-पान के दोष से उत्पन्न रोग में निम्नलिखित औषधोपचार करना चाहिए :—

(१) वायु के दर्द के साथ यदि क़ब्ज़ बढ़ा हो, तो दशमूल का

क्वाथ बनाकर उसमें दो तोला एरण्ड का तेल मिलाकर दो-तीन दिन तक रोज़ प्रातःकाल सेवन करने से आम-वात में विशेष उपकार होता है।

(२) रास्ना, नीम-गिलोय, अमलतास का गूदा, देवदारू, गोखरू एरण्ड की जड़, पुनर्नवा इनको समभाग मिलाकर दो तोला को विधिपूर्वक आध सेर जल में पकाकर आधपाव बाक़ी रहने पर छान ले, फिर इसमें एक माशा सोंठ का चूर्ण डालकर प्रति दिन दो बार पिए। इससे जाँघ, पिंडली, कमर, पीठ और पसलियों की भयानक वात-वेदना शान्त हो जाती है। यदि विरेचन देने की आवश्यकता हो, तो इसी क्वाथ को आधा तोला एरण्ड का तेल मिलाकर देना चाहिए।

(३) लहसुन की एक गाँठ को साफ़ करके उसकी पोथियों को घी में भूनकर उसमें नीबू का रस तथा नमक मिलाकर प्रतिदिन भोजन करने के पहले खाने से वायु के दर्द में विशेष लाभ होता है। इसका पहले थोड़ा-थोड़ा अभ्यास कर पीछे दो-तीन और चार तक लहसुन की गाँठें खानी चाहिए।

(४) वैश्वानर चूर्ण—सेंधा नमक दो तोला, अजवायन दो तोला, अजमोद दो तोला, सोंठ पाँच तोला और हरड़ बारह तोला लेकर सबका बारीक चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को प्रति दिन दो-तीन बार एक या दो माशा परिमाण में काँजी या गर्म जल के साथ सेवन करने से वायु का दर्द शीघ्र शान्त हो जाता है।

(५) पियाबाँसा, देवदारु और सोंठ इनको दो तोले परिमाण

में लेकर और क्वाथ बनाकर पीने से वात-वेदना शीघ्र शान्त हो जाती है।

(६) हरड़, चव्य, कुटकी, पीपल, नागरमोथा इनको समभाग में दो तोला लेकर पीसकर लुगदी बना ले, फिर इसमें एक तोला शहद मिलाकर सेवन करने से वात-वेदना शान्त हो जाती है।

(७) सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा और बायविडङ्ग इनको समभाग लेकर चूर्ण कर ले, फिर इस चूर्ण का आधा शुद्ध गूगल मिलाकर छोटे बेर के समान गोली बनाकर एक-एक गोली सुबह-शाम गर्म जल के साथ खाने से आम-वात की वेदना शीघ्र मिट जाती है।

(८) अलसी, श्वेत एरण्ड के बीज या छाल और पटसन के बीज इनको काँजी में पीस कर और गरम करके कपड़े में पुलटिस बना स्वेद देने से वायु का दर्द शान्त हो जाता है, अथवा केवल बालू को गर्म कर पोटली द्वारा स्वेद देने से वात-वेदना शान्त हो जाती है।

(९) कटेरी छोटी, सहिजन की छाल और पकी मिट्टी इनको समभाग में लेकर गो-मूत्र में पीसकर गर्म करके लेप करने से जोड़ों का दर्द बन्द हो जाता है।

(१०) सहिजन की छाल, सेंधा नमक और लहसुन इन सबको बराबर भाग में लेकर एरण्ड के तेल में भूनकर तेल को छान ले, इस तेल की मालिश करने से शीघ्र ही लाभ होजाता है।

(११) मालकाँगनी और कुचला दोनों को पाव भर की मात्रा में लेकर गोमूत्र में पीस ले, फिर एक सेर तिल के तेल में मिलाकर चार सेर गोमूत्र डालकर पका ले। जब तेल बाक़ी रह जाय, तब छानकर रख ले। इस तेल की मालिश करने से वायु के दर्द में विशेष लाभ होता है।

सब प्रकार के वात-रोगों में शास्त्रोक्त योगराजगूगल, अमर-सुन्दरी वटी, रसोनपिण्ड, लहसुन-पाक, नारायण तेल तथा माषादि तेल विशेष उपकारी हैं।
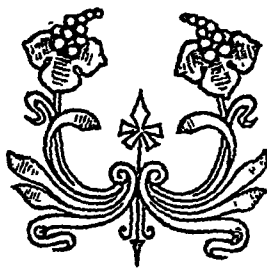
वमन व हिचकी
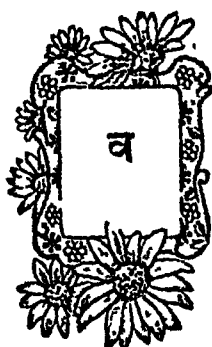
मन और हिचकी रोग अनेक कारणों से पैदा होते हैं; परन्तु उन कारणों में नीचे लिखे हुए कारण विशेष रूप से पाए जाते हैं :—

मलेरिया व किसी दूसरे ज्वर में उपवास करने से प्रायः उलटी और हिचकी पैदा हो जाती है। बच्चों को भी दुर्बलता अधिक होने से पेट की ख़राबी के कारण उलटी और हिचकी पैदा हो जाती है। अधिकतर हैज़ा और सन्निपात ज्वर आदि कठिन रोगों में हिचकी हो जाती है।

हर प्रकार की हिचकी व उलटी के उत्पन्न होने में कारण का ठीक विचार कर औषधोपचार का प्रयोग करना चाहिए। यदि कमज़ोरी के कारण ज्ञात होते हों, तो दूध या कोई बलकारक सुपाच्य पथ्य एक-एक तोले के परिमाण में आध-आध घण्टे के अनन्तर खिलाना चाहिए। एक साथ ही अधिक देने से आमाशय के ऊपर भार होने के कारण वह बाहर निकल आता है। पेट की ख़राबी होने पर वमन या हिचकी में दो-चार घण्टे तक कुछ न देना अच्छा है। बाद को सोच-विचार कर थोड़ा-थोड़ा पतला, सुपाच्य पथ्य छाना-जल आदि देना चाहिए। साधारण उपायों में

से पूर्वोक्त-रोग वाले को थोड़ा थोड़ा बर्फ़ चूसने को देना चाहिए, अथवा थोड़ा-थोड़ा गर्म जल या दूध पिलाना चाहिए।

औषधोपचार—(१) सफ़ेद चन्दन को एक तोले के परिमाण में घिसकर उसमें एक तोला आमले का रस मिलाकर शहद के साथ चाटने से उलटी और वमन बन्द हो जाते हैं।

(२) सूखे पीपल की छाल को लेकर अग्नि में जला कर किसी पत्थर के वर्तन में रखे हुए जल में बुझा दे। इस जल को छान कर थोड़ा-थोड़ा पिलाने से उलटी बहुत जल्द शान्त हो जाती है।

(३) मोर-पङ्ख के चन्दन की भस्म एक रत्ती, बड़ी इलायची का चूर्ण तीन रत्ती, काकड़ासींगी तीन रत्ती सबको मिला कर शहद के साथ चाटने से शीघ्र ही उलटी शान्त हो जाती है, अथवा केवल मोर-पङ्ख के चन्दन की भस्म दो रत्ती शहद के साथ चाटने से हिचकी और उलटी में विशेष लाभ होता है।

(४) गिलोय का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिला कर पीने से सब प्रकार की उलटी बन्द हो जाती हैं।

(५) बड़ी इलायची, लौंग, नागकेसर, काकड़ासींगी, प्रियङ्गु, नागरमोथा, लाल चन्दन इनका समभाग में चूर्ण बनाकर रख ले। इस चूर्ण को एक माशे शहद और चीनी के साथ मिला कर चाटने से उलटी शीघ्र ही बन्द हो जाती है।

(६) मक्खी की बीट को दूध अथवा लाख के रस के साथ मिलाकर नसवार लेने से अथवा सफ़ेद चन्दन को स्त्री के दूध में घिसकर नस्य लेने से हिचकी शीघ्र ही बन्द हो जाती है।

(७) शहद और काला नमक का चूर्ण मिलाकर त्रिजौरा नीबू के रस को पीने से साधारण हिचकी बन्द हो जाती है।

(८) काँस की जड़ का चूर्ण पाँच-छः रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चाटने से हिचकी शान्त होती है।

(९) पाढ़ल के फल और फूल का चूर्ण जल में पीसकर शहद के साथ चाटने से हिचकी शीघ्र बन्द हो जाती है।

(१०) मटर के चूर्ण को तम्बाकू की तरह चिलम में भर कर धुआँ पीने से हिचकी शीघ्र बन्द हो जाती है।

(११) कैथ का गूदा, चीनी और सोंठ इनको मिलाकर थोड़ा-थोड़ा खाने से हिचकी बन्द हो जाती है।
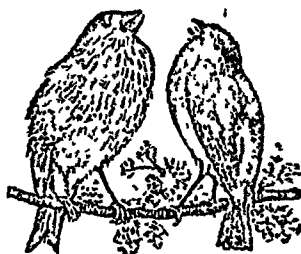
मूत्र-रोग

तो मूत्र-रोग अनेक प्रकार के होते हैं; किन्तु उनमें प्रमेह, सूज़ाक, मूत्रकृच्छ और मूत्राघात (मूत्र की रुकावट) ये रोग विशेष रूप से देखे जाते हैं। अन्यान्य रोगों का वर्णन इस ग्रन्थ में होना असम्भव है।

प्रमेह—प्रमेह अनेक प्रकार का होता है, उनमें में से यहाँ पर शुक्रमेह (अर्थात् शौच के समय पेशाब में धातु का गिरना), स्वप्न-दोष आदि, तक्रमेह और बहुमूत्र इन तीन रोगों का ही यहाँ पर औषधोपचार लिखा जायगा। रोग के कठिन होने पर, विशेष कर बहुमूत्र रोग में योग्य औषधि सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि यह बहुत भयानक रोग है।

सूज़ाक—यह रोग अधिकतर इस रोग के स्त्री-पुरुषों के सहवास करने से उत्पन्न होता है। इसके कारण एक प्रकार के विषैले कीड़े माने जाते हैं। इसी लिए इस रोग को एक नवीन व्याधि माना जाता है। आयुर्वेद में इस विषय पर स्पष्ट रूप से कहीं भी वर्णन नहीं मिलता और न उसकी चिकित्सा से इसमें विशेष लाभ ही होता है। इस पुस्तक में जो औषधि-प्रयोग लिखे

हैं, वे उपयोगी तथा उपद्रवों को दूर करने वाले हैं। इस रोग में जब तक विषैले कीड़े नष्ट न हो जायँ, तब तक इसका दूर होना असम्भव है। इसलिए इस रोग को निर्मूल करने के निमित्त सुपरीक्षित व विश्वास-योग्य औषधि सेवन करनी चाहिए।

मूत्राघात—यह भी अनेक कारणों से पैदा होता है। विशेष कर सूज़ाक में मूत्र-नाली के भीतर शोथ हो जाने के कारण मूत्राघात उत्पन्न होता है। ऐसी दशा में वे औषधि-प्रयोग, जो हैज़े के मूत्राघात में दिए जाते हैं, विशेष लाभदायक होते हैं। सूज़ाक की पुरातन अवस्था में मूत्र-प्रणाली के सिकुड़ जाने के कारण भी मूत्राघात पैदा होता है। इसमें पूर्व-लिखित प्रयोग विशेष फलप्रद नहीं होते; किन्तु ऐसी दशा में कैथेटर (मूत्र-शलाका) द्वारा मूत्र-मार्ग को चौड़ा करने से पेशाब उतरता है। इसके बाद आठ या दस घण्टे के बाद मूत्राघात-निवारक औषधि-प्रयोग लाभकारी हो सकते हैं।

मूत्रकृच्छ्र—कभी-कभी बिना सूज़ाक की खराबी के कारण भी पेशाब करते समय कष्ट और जलन पैदा हो जाती है। ऐसी दशा में सूज़ाक के लिए लिखी हुई मूत्रकारक औषधियों का प्रयोग करना बहुत लाभदायक है।

शुक्रमेह व स्वप्न-दोष की औषधि—(१) बड़ी हरड़ का बीज-रहित चूर्ण कर उसको चार माशे लेकर बराबर की मिश्री मिलाकर दोनों समय भोजन के बाद खाना चाहिए। हर

समय हरड़ को मुख में रक्खे रहने से इस रोग में विशेष उपकार होता है।

(२) इस रोग में मनुष्य को प्रति दिन कपालिकासन (धीरे-धीरे अभ्यास के साथ शिर नीचे पैरों को ऊपर करके रहना) करना तथा सायङ्काल को सोते समय हाथ-पैर और मुख धोकर सोना और ठीक समय पर जग कर फिर न सोना चाहिए।

(३) हरड़ एक छटाँक, नेत्रवाला, असगन्ध, सेमल की जड़, जटामासी प्रत्येक एक-एक तोला प्रमाण में लेकर जौ-कुट करके दो सेर पानी में पका ले। जब आधा सेर बाक़ी रहे, तब छान कर उसमें आधा सेर चीनी मिलाकर फिर पकावे। जब पक कर गाढ़ा अवलेह बन जाय, तब उतार कर रख ले। फिर इसमें से प्रति दिन दो बार एक तोला की मात्रा में सेवन करने से स्वप्न-दोष तथा शौचादि के समय धातु का गिरना बन्द हो जाता है।

स्वप्न-दोष के बहुत पुराने पड़ जाने पर निम्नलिखित स्वप्न-दोष वटी सेवन करनी चाहिए, अथवा कोई पौष्टिक रस सेवन करना चाहिए :—

(१) हरड़, बहेड़ा, आमला एक-एक तोला, शुद्ध कपूर एक तोला, चार तोला पुराना गुड़ तथा एक तोला सिंघाड़े का चूर्ण सबको मिलाकर बेर के बराबर गोली बना ले, इनमें से एक गोली सायङ्काल को सोते समय जल के साथ खाने से सुबह दस्त साफ़ होगा और स्वप्न-दोष बन्द हो जायगा। यदि केवल अजीर्ण के कारण स्वप्न-दोष होता हो, तो उसमें पहिले अजीर्ण की चिकित्सा करनी चाहिए।

पेशाब गँदला तथा मट्ठे की तरह होता हो, तो सबसे पहले अजीर्ण और अग्निमान्द्य की चिकित्सा करनी चाहिए। इसके लिए पहले अजीर्ण के लिखे हुए योगों का प्रयोग करना चाहिए। अजीर्ण शान्त होने पर पेशाब का गँदलापन भी दूर हो जाता है।

(२) आमला, हरड़, बहेड़ा, देवदारु, दारुहल्दी और नागरमोथा इनका क्वाथ बना कर शहद के साथ सेवन करने से पेशाब के गँदलेपन में विशेष लाभ होता है।

(३) पाषाणभेद के पत्तों का रस एक तोला शहद के साथ प्रति दिन खाने से पेशाब का गँदलापन दूर हो जाता है।

बहुमूत्र-रोग की औषधि—(१) आमले का रस एक तोला और शहद छः माशा दोनों को मिलाकर प्रति दिन दो-तीन बार पीने से बहुमूत्र-रोग में बहुत लाभ होता है।

(२) अडूसे के पत्तों का रस एक तोला, जवाखार एक माशा दोनों को मिला कर प्रति दिन दो बार पीने से बहुमूत्र रोग शान्त हो जाता है।

(३) मटर के बीज, मुलहटी, विदारीकन्द इनका एक-एक तोला चूर्ण शहद मिला कर प्रातःकाल चाट कर पीछे से कच्चा, ताजा धारोष्ण दूध पिए। इसके सेवन से मूत्र के प्रमाण में बहुत कमी आ जाती है।

(४) जामुन के बीज की गुठली छः माशा शहद के साथ प्रति दिन तीन बार चाटने से बहुमूत्र रोग में विशेष लाभ होता है।

(५) राल मोरवे की जड़, कमीले की छाल इन औषधियों

का चूर्ण दो माशा, आमला-रस तथा शहद के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह शान्त होते हैं।

(६) गिलोय का रस एक तोला और हल्दी का चूर्ण एक माशा शहद के साथ मिला कर सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह शान्त हो जाते हैं।

पथ्य—इस रोग में साधारणतः चीनी, और मिश्री आदि मीठे पदार्थ भात, मैदा, आलू आदि अधिक प्रमाण में न खाने चाहिए; किन्तु दोनों समय मोटे आटे की तथा सूजी की रोटी, घी, तोरई, वथुवा, परवल आदि की तरकारी वकरी का मांस-रस और मूँग की दाल आदि खाना चाहिए। यदि रोग वहुत वढ़ा न हो, तो दिन में वहुत कम परिमाण में पुराने चावलों का भात खाना चाहिए। वादाम, पिस्ता, अखरोट, नारङ्गी, अनार, वीदाना, अमरूद, जामुन आदि अम्ल, मधुर और कषाय रस वाले फल और दूध की काँजी, छाना जल सेवन करना चाहिए। घी अल्प परिमाण में खाना तथा मक्खन का सेवन करना वहुत अच्छा है। यदि शरीर दुर्वल है, तो दूध भी वहुत न देना चाहिए। रोग की वढ़ी हुई हालत में केवल सूजी की रोटी, मूँग की दाल तथा मांस-रस सेवन करना चाहिए। शरीर में साफ़ तिल का तेल और आयुर्वेदीय प्रमेहमिहिर तेल, लाक्षादि तेल और चन्दनादि तेल का मर्दन करके स्नान करना चाहिए। सामर्थ्य होने पर प्रातःसायं दोनों काल में प्रति दिन साफ़ हवादार वग़ीचे या जङ्गल तथा घर की छत के ऊपर धीरे-धीरे टहलना चाहिए।

कुपथ्य—दिन में सोना, पुस्तकादि पढ़ना, चिन्ता करना, सदा एक ही स्थान में बैठे रहना या पड़े रहना हानिकारक है। अधिक प्रमाण में रोटी, दूध, घी, मिर्च, दही तथा अधिक मसाले-दार शाक या मांस-रस और मीठी चीजें खाना तथा मैथुन करना अत्यन्त हानिकर है।

बहुमूत्र या मधुमेह रोग में केवल छोटे-छोटे योगों के ऊपर चिकित्सा निर्भर न करनी चाहिए; बल्कि मेदाधिकार में लिखित चन्द्रप्रभा, शिलाजीत वटी, वसन्त कुसुमाकररस, शिलाजीत विधान आदि औषधियाँ ठीक व्यवस्थापूर्वक सेवन करनी चाहिए। जब तक कोई योग्य चिकित्सक न मिले, तब तक पूर्व-लिखित योगों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

सूज़ाक की औषधि—(१) एक तोला खरैंटी या भिण्डी के पत्ते या जड़ जल में पीस कर एक तोला मिश्री के साथ पाव भर जल में शरबत बना, छान कर पीने से पेशाब साफ़ और जलन बन्द हो जाती है।

(२) कुश, काँस, खस, इक्षु (गन्ना), शरकण्डा की जड़, गोखरू, सफ़ेद चन्दन, लाल चन्दन, प्रत्येक छः-छः माशा लेकर जौ-कुट करके आध सेर जल में क्वाथ बनाले। ठण्ढा होने पर इसमें एक तोला मिश्री मिला दे, इस क्वाथ को प्रति दिन तीन-चार बार पीने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

(३) सफ़ेद चन्दन, कबावचीनी, गोखरू, अनन्तमूल, दारु-हल्दी, आमला, हरड़, बहेड़ा प्रत्येक को छः-छः माशे लेकर पूर्व-रीति

से क्वाथ बना प्रति दिन तीन-चार बार पीने से सूजाक में मूत्र-शुद्धि के साथ जलन, दर्द आदि शान्त हो जाते हैं।

(४) दो तोला कच्ची हल्दी का रस शहद के साथ मिलाकर पिलाने से मूत्र-नली के घाव तथा पीव में विशेष लाभ होता है।

(५) क़ब्ज़ के होने पर दो तोला शुद्ध एरण्ड का तेल पाव भर गर्म दूध के साथ मिलाकर पिलाने से दस्त होने पर बहुत लाभ होता है। पेशाब साफ़ रखने के लिए जल अधिक प्रमाण में पीना चाहिए।

(६) जलन, दर्द, पीव और पेशाब के बन्द होने पर चन्दन के तेल की दो बूँदें ठण्डे जल में डाल कर दिन में दो-तीन बार पीना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है।

इस रोग के कीटाणुओं को निर्मूल करने के लिए शास्त्रोक्त चन्दनारिष्ट नामक औषधि के साथ चन्दन का तेल सेवन करना चाहिए; तथा लिङ्गेन्द्रिय में परमैंगनेट पोटास की प्रति दिन एक बार पिचकारी लगाने से रोग निर्मूल हो जाता है।

मूत्राघात वा मूत्रकृच्छ्र रोग की औषधि—(१) ककड़ी के बीजों को एक तोला लेकर उनका कल्क बना ले। इसमें थोड़ा सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर काँजी के साथ पीने से मूत्राघात नष्ट हो जाता है।

(२) पाषाण भेद के पत्ते को तेल लगा सेंककर वस्ति तथा इन्द्रिय में बाँधने से पेशाब खुल जाता है।

(३) लिङ्ग में एक कपूर की डली प्रवेश करने से भी पेशाब खुल जाता है।

(४) जवाखार एक माशा, सत्त गिलोय चार रत्ती दोनों को जल या शर्वत के साथ पीने से पेशाव खुल जाता है।

(५) घोड़े की लीद को खूब पकाकर रोगी की पेडू व वस्ति-स्थान में सेंक करने से पेशाव खुल जाता है।

(६) वरने की छाल, गोखरू, पापाणभेद, कुश की जड़, कास, इक्षु की जड़, खस, शरकण्डे की जड़ प्रत्येक छः-छः माशे लेकर क्वाथ वना ले। ठण्ढा होने पर उसमें थोड़ा कच्चा दूध और चीनी मिलाकर पिलाना चाहिए। इस क्वाथ से मूत्र-कष्ट, जलन और रुकावट दूर हो जाती है। केवल पापाणभेद के पत्तों का एक तोला रस मिश्री मिलाकर प्रति दिन दो वार पीने से भी वहुत लाभ होता है।

(७) आमला, किशमिश, विदारीकन्द, मुलहटी, अमलतास का गूदा, गोखरू, नेत्रवाला और हरड़ प्रत्येक छः-छः माशे लेकर क्वाथ वना ले। ठण्डे होने पर एक तोला चीनी मिलाकर खिलाने से मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात रोग दूर हो जाते हैं।

(८) नारियल के गोले के टुकड़े को खाकर पीछे से चार रत्ती जवाखार, आधी रत्ती कपूर और थोड़ी चीनी का शर्वत वना कर पीने से शीघ्र ही पेशाव साफ़ उतरता है।

(९) सफ़ेद चन्दन को घिसकर चावलों के जल के साथ चीनी मिलाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ, जलन, पेशाव में खून का आना आदि रोग बन्द हो जाते हैं।

मुख और दन्त-रोग
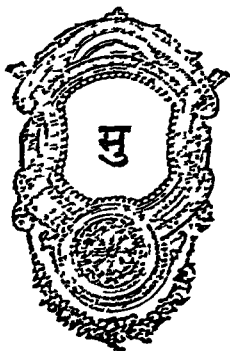
मुख तथा दाँतों के रोग अनेक प्रकार के होते हैं; परन्तु उनमें से मुख और जीभ के छाले, मसूड़ों में पीव, दाँतों का ढीलापन और शूल तथा कीड़े लगना आदि कतिपय रोगों के विषय में यहाँ पर कुछ लिखा जाता है। अजीर्ण तथा अम्लपित्त के कारण मुँह और जीभ में छाले पड़ जाते हैं। बहुत तेज़, गर्म और चरपरी चीज़ों के खाने से अधिकतर मसूड़ों में रोग पैदा हो जाते हैं। मुख के साफ़ न रखने तथा दूध की ख़राबी से प्रायः बच्चों के मुख में छाले पड़ जाया करते हैं। अधिक खट्टी चीज़ों के खाने से प्रायः दाँतों में दर्द होता है तथा कीड़े लग जाते है। दाँत साफ़ न रखने, अजीर्ण रोग होने तथा अशुद्ध पारा (जिसे बहुत वैद्य उपदंश वाले को रस-कपूर लिखा देते हैं) सेवन करने से प्रायः मसूड़ों से खून और पीव निकलती तथा दाँतों की जड़ ढीली पड़ जाती है।

साधारण व्यवस्था—मुख या दाँत के घाव (क्षत-छाला) आदि जिन कारणों से पैदा हुए हों, पहले उन कारणों से परहेज़

करना चाहिए। उनका त्याग न करने पर रोग में शान्ति होना कठिन है। मुख और दाँतों को सदा साफ़ रखना, किसी प्रकार अजीर्ण न होने देना और पेट साफ़ रखना इन रोगों में सबसे पहली चिकित्सा है। इसलिए सदा किसी अच्छे दन्त-मञ्जन या दाँतों के ब्रुश अथवा दतौन के द्वारा दाँतों को साफ़ करना चाहिए। यदि कण्ठ तथा नासिका-रोग के साथ मुख में छाले हों, तो उनके लिए अलग-अलग व्यवस्थानुकूल चिकित्सा करनी चाहिए। साधारण अवस्था में निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहिए :—

औषधि-प्रयोग—(१) मुख और जीभ में छाले होने पर शुद्ध तूतिया और गेरू दोनों को मिलाकर मुख में लगा दे, फिर पन्द्रह मिनिट के बाद गर्म जल से कुल्ला करे, तो सब छाले दो-तीन दिन में मिट जायँगे।

(२) रसोत छः माशा, फिटकरी एक माशा दोनों को एक पाव गर्म जल में घोलकर ठण्ढा होने पर उससे तीन-चार बार कुल्ला करे। केवल दो माशा फिटकरी को एक पाव जल में मिला कुल्ला करने से भी विशेष लाभ होता है।

(३) चमेली के पत्ते दो तोला, बबूल की छाल दो तोला तथा जामुन की छाल एक तोला जौ-कुट करके एक सेर पानी में पका ले। जब आधा सेर बाक़ी रहे तब उतार कर ठण्ढा कर ले। इस जल से कुल्ला करने से विशेष लाभ होता है।

(४) भेड़ के दूध या घी को मुख और जिह्वा के छालों में लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

(५) चमेली के पत्तों की लुगदी को द्विगुण घी में भून ले और पकने के बाद घी को छान ले। इस घी के लगाने से मुँह के छालों में अत्यन्त लाभ होता है।

(६) कभी-कभी बच्चों के मुख के भीतर एक प्रकार के छाले पड़ जाते हैं। ऐसी अवस्था में एक छोटे कपड़े को गर्म जल में भिगोकर दूध पीने के बाद हर समय मुँह को भीतर से साफ़ करना चाहिए, और तीन माशे सुहागे की खील को छः माशे शहद में मिलाकर प्रति दिन दो-तीन बार मुख साफ़ करके भीतर लगाना चाहिए।

(७) दाँतों के ढीले पड़ जाने पर अकरकरा, जामुन के सिरके में बुझी हुई रूमी मस्तगी, मौलसिरी की छाल, बादाम के छिलके, सुपारी की भस्म, सेंधा नमक और भुनी हुई फिटकरी. प्रत्येक एक एक तोला और कपूर तीन माशे सबको मिलाकर दन्त-मञ्जन तैयार कर ले। इस मञ्जन को प्रति दिन दो बार दाँतों में ब्रुश, ऊँगली या नीम की दतौन द्वारा लगाने से दाँतों की जड़ मज़बूत होती है; और मुँह से दुर्गन्धि नहीं आने पाती।

(८) लौंग, दालचीनी, माजूफल, अकरकरा, जली हुई सुपारी इनको एक-एक तोला बारीक चूर्ण कर एक माशा कपूर में मिलाकर मञ्जन करने से बहुत लाभ होता है।

(९) दाँतों की जड़ ढीली पड़ने से या कोमल होने तथा जड़ से ख़ून निकलने में पहले मुख के छालों के लिए लिखे हुए २-३ नम्बर के प्रयोगों को काम लाना चाहिए।

(१०) कृमिदन्त या दन्त-शूल में लौंग या दालचीनी का तेल चार बूँद रूई के फ़ाहे में लगाकर सींक से दाँत के गड्ढे में भर दे। इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है

(११) थूहर या आक का दूध रुई में भिगोकर उसको सींक से दूसरे दाँत तथा मसोड़ों को बचाकर दर्द वाले दाँत के छेद में रख दे, इससे शीघ्र शान्ति हो जाती है।

(१२) एक रत्ती हींग को एक माशे घी में भूनकर उस घी का फ़ाहा दाँत में रखने से पीड़ा शान्त हो जाती है।

(१३) छोटी-बड़ी कटेरी और एरण्ड की जड़ इनका विधि-पूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें तेल डाल कर कुल्ला करने से कृमि-दन्त की वेदना शान्त हो जाती है।

(१४) दाँतों के मसूड़े पक जाने पर या ज्ञान-दाढ़ों के निकलने के पहले मसूड़ों में पीड़ा होती है, और वे कड़े हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में एक तेज़ चाकू को गर्म करके उससे मसूड़े को चीर दे और बाद को फिटकरी के पानी से दो-तीन दिन तक कुल्ला करे। इससे शीघ्र ही मसूड़े अच्छे हो जायँगे।

अपथ्य—दाँत के रोगी को खट्टे फल, ठण्ढा जल, रूक्ष अन्न तथा बहुत कड़ी चीजें न खानी चाहिए।
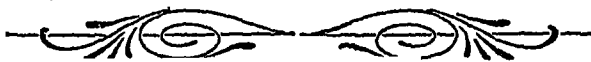
कण्ठ व नासिका-रोग

खराब धुआँ या धूलि वाले स्थान अथवा मार्ग में चलने से और बन्द हवा वाले मकान में काम करने से तथा अधिक शीत के लगने से कण्ठ तथा नासिका-रोग उत्पन्न हो जाते हैं। नवीन कण्ठ-रोग में काक-स्वरयन्त्र बड़े हो जाते हैं, गले के भीतर दोनों तरफ़ की गाँठें फूल जाती हैं, गले के भीतर छोटे-छोटे घाव हो जाते हैं; और गले के बाहर की भी गाँठें फूल जाती हैं। पुराने कण्ठ-रोग में सदा नाक से सिंघाण या पानी बहता है; और सूखी खाँसी, गले के बीच में रुकावट, मन में हर समय अनुत्साह और किसी चीज़ के खाने से गले में दर्द होता है। यह रोग अधिकतर दरिद्री मनुष्यों, बाल-बच्चों तथा बहुत घनी बस्ती में रहने वाले वकील-मुख़्तार तथा पण्डितों में देखा जाता है। यों तो यह रोग गले के भीतर और देखने में मामूली है; परन्तु इस रोग से मनुष्यों का स्वास्थ्य अधिक ख़राब हो जाता है।

इस रोग में अपने आहार-विहारों को ठीक रखना, प्रति दिन शुद्ध वायु के लिए सुबह-शाम टहलना, स्नान करना और विशेष बलकारक पथ्य भोजन करना अत्यन्त आवश्यक है। हो सके तो

घनी बस्ती वाले तथा बन्द हवादार मकान को कुछ दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए।

औषधि-प्रयोग—(१) कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ़ और इन्द्रजौ इन औषधियों को गोमूत्र में पकाकर क्वाथ की रीति से पीने से सब प्रकार के कण्ठ-रोग दूर हो जाते हैं।

(२) जवाखार, मालकाँगनी के बीज, चव्य, पाढ़, रसोत, दारुहल्दी तथा पीपल इन सब औषधियों को समभाग में लेकर बारीक चूर्ण बना ले। इस चूर्ण में शहद मिलाकर बेर के समान गोली बना ले। एक-एक गोली मुख में रखकर चूसने से सब प्रकार के कण्ठ-रोग नष्ट हो जाते हैं।

(३) आध सेर गर्म जल में आधी छटाँक चाय और चार-पाँच लौंग डालकर दस मिनिट तक ढकन देकर रख दे। फिर जल को छानकर इस जल से कुल्ला करे। जल को मुख में इस तरह रखना चाहिए कि वह गले को साफ़ कर सके। इसी जल को थोड़ा गर्म करके एक चम्मच अथवा रुई के फाहे से नाक के भीतर धीरे-धीरे डाले। जब औषधि नाक से गले में आजाय, तब कुल्ला करके बाहर निकाल दे। इस प्रकार प्रति दिन दो-तीन बार करने से नासिका और कण्ठ-रोग में विशेष लाभ होता है।

(४) दारुहल्दी, नीम की छाल, रसोत और इन्द्रजौ प्रत्येक एक-एक तोला लेकर एक सेर जल में पाव भर बाक़ी रहने तक पकावे। फिर छानकर इस क्वाथ से कुल्ला करने तथा नाक से खींचने पर कण्ठ तथा नासिका-रोग नष्ट हो जाते हैं।

(५) प्रति दिन प्रातःकाल नाक द्वारा जल पीने के अभ्यास से कण्ठ, नासिका, शिर, कर्ण और आँखों के रोग नष्ट हो जाते हैं।

मुख, नासिका और कण्ठ-रोग में च्यवनप्राश, आमलावलेह, द्राक्षारिष्ट आदि औषधियाँ विशेष गुणदायक हैं।

कर्ण-रोग

न को हर समय खुजाने, नाई द्वारा मैल निकलवाने, अधिक ठण्ढ लगने, कान के हर समय खुले रखने और धूल आदि के प्रवेश होने से उसमें पीव, घाव और कर्णमूल आदि उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत पुराने कर्ण-रोग में कान के परदे में एक छिद्र हो जाता है। उसका कारण यह है कि कान के परदों के पीछे एक स्वाभाविक नली कण्ठ के छिद्र के साथ मिली रहती है। जब गले में कोई घाव आदि होते हैं, तो उनकी ख़राबी कान के परदे तक पहुँच जाती है। ऐसी दशा में कर्ण में सदा पीव बहती है; और धीरे-धीरे कान बहरा हो जाता है। कहीं-कहीं कान की नाड़ी में ख़राबी आने के कारण कर्ण-रोग पैदा होता है, जिसकी चिकित्सा बहुत कठिन होती है।

साधारण व्यवस्था—कर्ण-रोग की चिकित्सा करने के पहले इस बात को देखना आवश्यक है कि रोग किस कारण से पैदा हुआ है; क्योंकि कारण के निश्चय किए बिना उसकी यथार्थ चिकित्सा होना कठिन है। रोग की परीक्षा करके कान को प्रति दिन धोना चाहिए। कान में पीव होने पर सभी स्थानों में प्रति दिन

एक या दो वार निम्नलिखित उपायों से अथवा परमैंगनेट पोटास से कान को पिचकारी द्वारा धोना चाहिए ; किन्तु मैला पानी या मैली पिचकारी काम में न लानी चाहिए। रूई की डाट से कान को वन्द न रखना चाहिए ; क्योंकि रुकी हुई पीव भीतर रह कर हानि उत्पन्न कर देती है।

प्रतिषेध—नाई से कान का मैल निकलवाने तथा हर समय लकड़ी या सींक से कान को खुजाने और गले के छाले या घावों की उपेक्षा करने से प्राय: कर्ण-रोग उत्पन्न हो जाता है, अतएव इनसे विशेष परहेज़ करना चाहिए।

औषधि-प्रयोग—(१) ववूल की छाल तथा परवल और नीम के पत्तों का क्वाथ वनाकर पिचकारी द्वारा कान को धोने से पीव नहीं पड़ने पाती।

(२) दारुहल्दी दो तोला परिमाण में लेकर आधे सेर खौलते हुए गर्म जल में डालकर छान ले। इस जल से पिचकारी द्वारा कान को धोने से पीव निकलना वन्द हो जाता है।

(३) नीम के पत्तों को पानी में उवालकर और थोड़ा नमक मिलाकर कान धोने से विशेष लाभ होता है।

(४) सज्जीक्षार, सूखी मूली, हींग, सोंठ, पीपल, सोवे के वीज इन सवको समभाग में पाव भर लेकर पानी के साथ लुगदी वना ले। इसको एक वड़े कलई के वर्तन में डालकर उसमें चार सेर काँजी और सेर भर तिल का तेल मिलाकर पका ले। जव तेल वाक़ी रह जाय, तव छान कर रख ले। इस तेल को कान धोने के

पीछे प्रति दिन चार-पाँच बूँद डालने से पुरानी पीव, दर्द और कान की आवाज़ इत्यादि बन्द हो जाते हैं।

(५) यदि किसी कारण से अकस्मात् कान में बहुत शूल हो, तो सैंजने की जड़ की छाल के रस में तिल का तेल मिलाकर गर्म करके डाल दे। इससे शीघ्र ही कान का दर्द बन्द हो जायगा। आठ प्रकार के मूत्रों में से किसी मूत्र को गुनगुना करके कान में डालने से भी दर्द बन्द हो जाता है।

(६) लहसुन, अदरक, सैंजना, मूली, केले की डण्डी इन छः चीज़ों में से किसी एक का स्वरस दो-तीन रत्ती समुद्रफेन में मिलाकर गुनगुना करके कान में डालने से दर्द बन्द हो जाता है।

(७) आक के पके हुए पत्ते में घी अथवा कड़ुवा तेल लगा कर अग्नि में सेंक कर उसका रस निकाल ले। इस रस को कान में डालने से अथवा प्याज़ का रस छानकर और गर्म करके कान में डालने से कान का दर्द शीघ्र बन्द हो जाता है।

(८) सँभालू के पत्ते का रस गर्म कर उसमें एक रत्ती अफ़ीम घोलकर कान में डालने से कर्ण-शूल शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

(९) यदि कान के भीतर घाव हो गया हो, तो धतूरे के पत्तों के रस को गर्म करके कान के बाहर लेप करना चाहिए; और नीम के पत्तों का रस गर्म करके कान में दो-तीन बार थोड़ा-थोड़ा डालना चाहिए।

शिरोरोग

ह रोग कई प्रकार का होता है ; जैसे—शिर:शूल, सूर्यावर्त्त, अर्धावभेदक और शङ्खक आदि , किन्तु उनमें से इस ग्रन्थ में शिरपीडा व शिर-शूल आदि प्रचलित रोगों के लिए ही औषधि-प्रयोग लिखे जाते हैं। शिर-पीड़ा अनेक प्रकार की होती है। जहाँ पर ज्वर, कास, आँखों का दर्द और क़ब्ज़ आदि कारणों से शिर-पीड़ा उत्पन्न हुई हो, वहाँ पर मूल रोग की चिकित्सा करने पर ही शिरोरोग में विशेष शान्ति होती है। यदि क़ब्ज़ के कारण शिर में दर्द होता हो, तो कोष्ठ-शुद्धि के लिए विरेचन अवश्य लेना चाहिए। साधारण शिर:पीड़ा में निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए :—

(१) कूट और एरण्ड की जड़ की छाल दोनों को काँजी में पीसकर अथवा मुचकुन्द के फूलों को पीसकर सिर में लेप करने से शिर-पीड़ा दूर हो जाती है।

(२) सोंठ, मिर्च, पीपल, पोहकरमूल, हल्दी, विजयसार और असगन्ध इन औषधियों का क्वाथ बनाकर नाक द्वारा पीने से सब प्रकार के शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं।

(३) पके हुए आठ-दस पानों के साथ दो रत्ती कपूर

पीस कर शिर में लेप करने से अनेक प्रकार की शिरःपीड़ा नष्ट हो जाती है।

(४) आमला और कमल के फूल दोनों को पीसकर थोड़ा घी मिलाकर मस्तक या कपाल पर लेप करने से शिरःपीड़ा वन्द हो जाती है।

(५) दूध के साथ तिलों को पीस कर गर्म करके कपाल पर लेप करने से वात-पित्त की शिरोवेदना में विशेष लाभ होता है।

(६) दशमूल के कषाय में सेंधा नमक तथा घी डाल कर नस्य लेने से सूर्यावर्त्त (जिसमें सिर की वेदना सूर्य के साथ बढ़ती और शान्त होती है), अर्धावभेदक अर्थात् आधे सिर या कपाल में दर्द होना दोनों ही वन्द हो जाते हैं।

(७) अनन्तमूल, कुड़े की छाल और केशर इनको काँजी में पीस कर घी मिलाकर लेप करने से सूर्यावर्त्त व अर्धावभेदक रोग की पीड़ा में विशेष उपकार होता है, अथवा कुड़े की छाल घूँघची, रक्त चन्दन, दालचीनी और चीनी समभाग में जल के साथ पीस कर लेप करने से हर एक प्रकार की शिरःपीड़ा शान्त होती है।

(८) नारियल का जल और चीनी दोनों को मिला कर प्रति दिन दो-तीन बार नस्य लेने से सूर्यावर्त्त और अर्धावभेदक रोगों में विशेष लाभ होता है, अथवा प्रातःकाल ताजे दूध के मक्खन का नस्य लेने से शिरःपीड़ा में विशेष लाभ होता है।

इसके सिवाय ज्वर-प्रकरण में लिखी हुई शिरोवेदना की औपधियों का भी प्रयोग करने से लाभ होता है।

पुराने शिरोरोग में महाभृङ्गराज तेल शिर में लगाने और नस्य लेने अथवा आमले का तेल और षड्विन्दु तेल की मालिश करना और नस्य लेना चाहिए।

नेत्र-रोग

खों के रोग अनेक प्रकार के होते हैं; किन्तु उनमें से आँखों का दुखना, खाज होना, रतौंधी और आँख में चोट लगना ये रोग साधारण रूप से होते हैं। इन्हीं की चिकित्सा यहाँ पर लिखी जायगी। बड़े-बड़े भयानक नेत्र-रोगों की चिकित्सा किसी अच्छे वैद्य या डॉक्टर को दिखाकर करानी चाहिए।

साधारण व्यवस्था—आँख दुखना और खाज होना ये दो नेत्र-रोग संक्रामक (अर्थात् एक से दूसरे को लगने वाले) रोग हैं; इसलिए इन रोगों की उत्पत्ति में रोगी को अपने या दूसरे घर वाले मनुष्यों से पूरा परहेज रखना चाहिए। रोगी को आँख पोंछने या रगड़ने के लिए दूसरों के कपड़े या अँगौछे काम में न लाने चाहिए। आँख पोंछने वाले कपड़े को गर्म जल में डालकर साबुन से धो लेना चाहिए। इसके सिवाय नेत्र-रोगी का जूठा भोजन, पानी तथा सोने-बैठने के बिछौने आदि से भी परहेज रखना चाहिए।

यदि नेत्र दुखने पर प्रकाश न सहा जाय, तो आँखों के ऊपर हरे या नीले कपड़े का परदा लगाना चाहिए, अथवा हरे रङ्ग का

चश्मा लगाना चाहिए। आँखों को पानी या पीव निकलने की अवस्था में रात्रि के समय बाँधना अत्यन्त हानिकारक है। जब तक आँख अच्छी न हो, तब तक स्नान न करना चाहिए। रतौंधी रोग में रोगी को प्रायः वल वढ़ाने वाले आहारों का सेवन और शिर में आमले या चन्दनादि के तेल की मालिश करना अत्यन्त आवश्यक है।

औषधोपचार—(१) नेत्र दुखने पर फिटकरी दो तोला, सेंधा नमक एक तोला और मिश्री एक तोला इन सबको बारीक पीस कर सेर भर गुलाब जल में घोल-छान कर रख ले। इसमें से तीन-तीन बूँद प्रति दिन तीन-चार बार डालने से बहुत लाभ होता है।

(२) फिटकरी एक तोला लेकर उसको चार तोला गाय के घी में भून कर जला ले; फिर उसमें एक माशे साफ़ अफ़ीम डाल कर लोहे के वर्तन में ख़ूब बारीक घोटे। इसमें से दो रत्ती शाम को सोते समय आँखों में डालने से बहुत शीघ्र लाभ होता है; परन्तु इस औषधि को आँख आने के तीन दिन बाद डालना चाहिए।

(३) रसोत एक माशा और स्त्री का दूध दोनों को मिलाकर प्रति दिन तीन-चार बार आँखों में पाँच-पाँच बूँद डाले और प्रति दिन लोध के जल से निम्नलिखित रीति से धोता रहे। इससे आँखों का दुखना शीघ्र अच्छा हो जाता है। छः माशा लोध का बारीक चूर्ण आधपाव साफ़ गरम जल में आध घण्टे तक भिगो रक्खे, फिर जल को छान कर साफ़ रूई के फाहे द्वारा रोगी के शिर को नीचे करके बाएँ हाथ की उँगलियों से नेत्र के पलकों को लौटा कर धीरे-धीरे

सब आँख को धो डाले। इस रीति से नेत्र के सब दोष दूर हो जाते हैं।

(४) कच्चे आमलों को किसी साफ़ खरल या पत्थर में कूट कर रस निकाल कर उस रस से पूर्वोक्त रीति से आँखों को धोना चाहिए।

(५) सेंधा नमक, दारुहल्दी, गेरू, हरड़ और रसोत इन सबको जल के साथ पीस कर लेप करने से आँख दुखना और जल निकलना बन्द हो जाता है।

(६) अडूसे की जड़ की छाल, हरड़, नीम की छाल, बहेड़ा, नागरमोथा, आमला और पटोलपत्र सब मिला कर दो तोला एक सेर जल में पकावे। आध सेर बाक़ी रहने पर ठण्डा करके छान ले। इस जल के द्वारा आँखों को धोने से आँखों का फूला, खाज, दुखना और पानी बहना सब बन्द हो जाते हैं।

(७) चिरचिटे की जड़ को ताँबे के बर्तन में दही के पानी के साथ घिसकर थोड़ा सेंधा नमक मिला कर आँखों में डालने से दुखती हुई आँख अच्छी हो जाती है।

(८) गेरू, लाल चन्दन, सोंठ, खड़िया तथा बच इन सब औषधियों को जल के साथ पीस कर आँखों के बाहर लेप करने से दर्द दूर हो जाता है।

(९) नेत्र के पलकों की खाज में कपूर का बारीक चूर्ण कर उसको बड़ के दूध में घोट कर आँखों में लगाने से आँखों की खुजली मिट जाती है।

(१०) केवल त्रिफला के जल (एक तोला त्रिफला का चूर्ण आध पाव पानी में डाल कर छः घण्टे बाद छाना हुआ) से आँखों को धोने पर आँखों की खाज आदि खराबियाँ मिट जाती हैं और आँखों की ज्योति बढ़ती है।

(११) तीन हरड़, छः बहेड़ा, बारह आमले सबको एक सेर पानी में पका कर पाव भर क्वाथ बना ले। इस क्वाथ के पीने से आँख का दुखना, लाल रहना, पानी बहना, सूजन और खुजली आदि विकार दूर हो जाते हैं।

(१२) रतौंधी-रोग में कमल तथा नील कमल की केशर को गोबर के रस में घोट कर गोली बना ले, इस गोली को पानी में घिस कर आँखों में लगाने से शीघ्र ही लाभ होता है। कितना ही पुराना रोग क्यों न हो, इसके लगाते ही अच्छा हो जाता है।

(१३) दही के साथ काली मिर्च को घिस कर लगाने से नक्तान्ध (रतौंधी) रोग नष्ट हो जाता है। एक जुगनू नामक कीड़े को पान के पत्ते में रख कर खाने से भी इस रोग में विशेष लाभ होता है।

(१४) बकरी के जिगर के बीच में पीपल रख कर जल के साथ पकावे। जब थोड़ा जल बाक़ी रहे, तब उतार-छान कर पीपल को उसी छाने हुए जल में पीसकर बत्ती बना ले। इस बत्ती को पानी में घिस कर आँजने से नक्तान्ध रोग नष्ट हो जाता है। इसी रीति से पकाई हुई काली मिर्च के साथ शहद का अञ्जन लगाने से रतौंधी दूर हो जाती है।

(१५) ताज़े गोबर का रस पाँच बूँद लेकर दो-तीन बूँद स्त्री का दूध मिला, प्रति दिन दो बार अञ्जन करने से रतौंधी दूर हो जाती है।

(१६) दो तोला मेंहदी के पत्तों को सायङ्काल के समय आधा पाव गर्म जल में भिगो कर रख दे, दूसरे दिन प्रातःकाल पत्तों को मसल कर जल को छान ले। इस जल में बराबर का कच्चा, ताजा दूध मिला कर पीने से दो-तीन दिन में ही रतौंधी अच्छी हो जाती है।

(१७) आँख में चोट लगने पर एक साफ़ कपड़े को हल्दी के मिले हुए जल अथवा केवल ठण्डे जल में भिगोकर आँख में ढीला बाँधे रहना चाहिए और उसी जल से कपड़े को भिगोते रहना चाहिए। इस उपाय से साधारणतः आँखों की लालिमा, वेदना व फूला शान्त हो जाता है।

(१८) सुरमा अथवा रसोत, सफ़ेद मिर्च, पीपल, मुलहठी, बहेड़े के बीज की गिरी, शङ्ख-नाभि तथा मैनसिल इन सब औषधियों को समभाग मे लेकर बारीक चूर्ण बना ले, फिर इसे बकरी के दूध में खूब घोटकर छोटी-छोटी बत्ती बनाकर छाया में सुखा ले। इस बत्ती को पानी में घिस कर आँखों में लगाने से फूला, जाला, वेदना, रतौंधी आदि सब रोग दूर हो जाते हैं।

आँखों की चिकित्सा में जल सर्वथा शुद्ध और साफ़ काम में लाना चाहिए। तराई की जगहों में जल को अग्नि में खब उबाल

देकर शुद्ध कर लेना आवश्यक है। आँख धोने के लिए काम में आने वाला जल, पात्र, आँख बाँधने का कपड़ा और रूई आदि सब चीज़ें अत्यन्त साफ़ और शुद्ध होनी चाहिए। आँख धोने के लिए पहले लिखा हुआ लोध का जल अथवा त्रिफला का पानी सर्वोत्तम औषधि है।
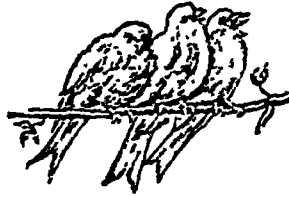
चर्म-रोग

न्यान्य रोगों की तरह चर्म-रोग भी अनेक प्रकार के होते हैं, उनमें से केवल दाद, खुजली, मुँह की फुन्सी, सिध्म (वनरफ़), विचर्चिका (फोड़े वाली खाज), अलसक़ (खारुआ) और साधारण खुजली इन रोगों के लिए ही यहाँ पर औषधि लिखी जायँगी ; क्योंकि ये ही रोग प्रायः साधारण रूप से सबको होते हैं। इनके सिवाय चर्म-रोगों में रक्त के विशेष दूषित होने के कारण किसी सुयोग्य वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिए।

दद्रु (दाद) रोग—(१) सबसे अच्छी औषधि शीशम का तेल माना जाता है। शीशम की अच्छी, पक्की, पुरानी जड़ को पाताल-यन्त्र में रख कर तेल निकाल ले (इस तेल के लगाने से चार दिन में ही दाद शान्त हो जाता है)

(२) पापड़ी नामक एक वृक्ष होता है, उसे सब मनुष्य प्रायः जानते हैं। उसके पत्तों को पानी में पीस कर दाद के स्थान पर लेप करने से शीघ्र ही लाभ होता है; किन्तु याद रहे यह लगाने में बहुत दर्द करता है।

(३) धनिया, पनवाड़ के बीज और हरड़ इन तीन चीज़ों को काँजी में पीसकर लेप करने से दाद मिट जाता है।

(४) वायविडङ्ग, पनवाड़ के बीज, कुँड़े की छाल और हल्दी इनको काँजी में पीस कर लेप करने से दाद शीघ्र मिट जाता है।

(५) करञ्ज की मींगी, अमलतास के पत्ते और बावची इनको जल में पीसकर लेप करने से दद्रु-रोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

(६) क्राईसोफ़ेनिक एसिड (Chrysophanic Acid) बीस ग्रेन (दस रत्ती) को ढ़ाई तोला घी में मिला कर लेप करने से दाद शीघ्र ही मिट जाता है ; किन्तु इससे कभी उस स्थान में जलन होती है और कपड़े में दाग़ पड़ जाता है।

(७) पनवाड़ के बीज, ज़ीरा सफेद इन दोनों को बराबर लेकर उसमें थोड़ी सुदर्शन बेल की जड़ डाल तथा पीसकर लेप करने से दद्रु शीघ्र मिट जाता है।

खुजली—इस रोग में खुजाने से जो घाव हो जाते हैं, उनको प्रति दिन नीम के पत्तों के जल से या कार्बोलिक साबुन लगाकर ब्रुश से अच्छी तरह धोना अत्यन्त आवश्यक है। इस रोग में एक प्रकार के छोटे-छोटे कीड़े पैदा हो जाते हैं और यह कीड़े घाव के चारों तरफ़ सूराख़ करते रहते हैं। इसलिए घाव के क्लेद (पानी) खरोंच या पीब आदि जब तक साफ़ न हों, तब तक उसमें कोई औषधि न लगानी चाहिए। रोगी के बिछौने की चद्दर, रज़ाई या दोहर और कपड़े आदि प्रति दिन साबुन या सज्जी मिट्टी से धोकर

साफ़ रखना आवश्यक है। यदि इस तरह सफ़ाई न रक्खी जायगी, तो जहाँ शरीर में उसका चेंप लगेगा, वहीं खुजली पैदा हो जायगी। शरीर में और कई प्रकार की साधारण खुजली होती हैं, वह इसी पामा रोग का भेद है। सम्पूर्ण शरीर में खाज होने पर निम्नलिखित तेल अथवा मरहम बनाकर सब शरीर में अच्छी तरह शरीर को साबुन, ब्रुश अथवा कपड़े से साफ़ करके लगाना चाहिए।

(१) गन्धक का चूर्ण एक तोला लेकर उसमें थोड़ा सरसों का तेल मिलाकर दो घण्टा तक खूब तेज धूप में रख दे। फिर गन्धक सहित तेल को घावों पर लगाए, अथवा केवल (नीम का तेल) ही (सम्पूर्ण शरीर में लगाने से विशेष लाभ होता है)।

(२) सफ़ेद कनेर की जड़ दो छटाँक, तेलियामीठ दो छटाँक दोनों को पानी में पीस कर लुगदी बना ले। उसमें एक सेर तिल का तेल और चार सेर गोमूत्र मिलाकर पकावे और तेल अवशेष रहने पर छान कर सब शरीर में उसकी मालिश करे। इससे पामा, सिध्म, विस्फोट आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

(३) सिन्दूर एक तोला और सफ़ेदा दो तोला दोनों को नारियल के दो छटाँक गर्म तेल में मिलाकर मरहम बना ले। इसके प्रयोग करने से खुजली मिट जाती है।

इस रोग की बढ़ी हुई हालत में शास्त्रीय सोमराजी तेल, मरिच्यादि तेल, पञ्चगव्य घृतादि का प्रयोग करना चाहिए।

मुँहासे—(१) लोध, धनिया और मसूर की दाल तीनों को

समभाग में जल के साथ पीस मुख पर लेप कर दे और दस मिनिट के बाद धो डाले। इस लेप से मुँहासे अच्छे हो जाते हैं।

(२) लाल चन्दन, मजीठ, कुड़ा की छाल, लोध और मसूर की छाल इन सबको जल में पीसकर लेप करने से मुख की फुन्सी तथा झाईं आदि रोग दूर हो जाते हैं, और मुख दिव्य-कान्ति वाला हो जाता है।

(३) केवल मसूर की दाल को घी में भूनकर और जल में पीस कर लेप करने से मुँहासे दूर होकर मुख की कान्ति बढ़ती है।

(४) सफ़ेद सरसों, वच, लोध तथा सेंधा नमक इन औषधियों को पीसकर मुख पर लेप करने से फुन्सी मिट जाती है।

सिध्म रोग—(१) गन्धक तथा जवाखार को कड़ुवे तेल के साथ पीसकर लेप करने से सिध्म (सीप) रोग मिट जाता है।

(२) कसोंदी के बीज, मूली के बीज तथा शुद्ध गन्धक तीनों को पीसकर लेप करने से सीप का रोग नष्ट हो जाता है।

(३) सूखे आमले, राल, जवाखार या विड् लवण इनको पीस कर तीन दिन तक काँजी में रक्खे; फिर इनको शरीर में उवटन की तरह मर्दन करे। इससे सीप का रोग दूर हो जाता है।

(४) मूली के बीजों को अपामार्ग के पत्तों के रस में पीस कर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट हो जाता है।

(५) कुड़ा की छाल, मूली के बीज, प्रियङ्गु, सफ़ेद सरसों, हल्दी और नागकेशर इन औषधियों को जल में पीस कर लेप करने से पुराना सीप रोग नष्ट हो जाता है।

विचर्चिका रोग—(१) आध पाव मेंहदी के पत्ते और छः माशा रसोत दोनों को जल में पीस कर लेप करने से विचर्चिका रोग मिट जाता है।

(२) थूहर के डण्डे को भीतर से कोर खोखले भाग में सरसा के कल्क को भर कर कपड़-मिट्टी करके अरने उपलों की आग में पका ले। फिर भस्म को निकाल कर उसमें सरसों का तेल मिलाकर बारीक पीस ले। इसके लेप करने से विचर्चिका निर्मूल हो जाती है।

प्रायः खान-पान की ख़राबी के कारण साधारण रक्त-विकृति होने से पामा, विचर्चिका आदि रोग उत्पन्न होते हैं। ऐसे स्थानों में एरण्डगजादि लेप करना उत्तम है। रक्त-शुद्धि के लिए रक्त-शोधक मञ्जिष्ठादि क्वाथ पीना चाहिए।

अलसक़ रोग—(१) यह अधिकतर वर्षा के दिनों में हर समय पाँवों के पानी या कीचड़ में रहने से उँगलियों के बीच के भागों के पक जाने पर पैदा होता है। इस रोग में हरड़ को पीस जल के साथ लेप करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

(२) करञ्ज के बीज, हल्दी, कसीस, मुलहठी, गोलोचन और पीली हरताल इन औषधियों का चूर्ण बनाकर लेप करने से खारुआ रोग दूर हो जाता है।

(३) पैरों को पहले काँजी से खूब भिगो कर बाद में पटोल-पत्र, नीम की छाल, कसीस, हरड़, बहेड़ा, आमला इनके कल्क का लेप बार-बार करने से खारुआ रोग मिट जाता है।

(४) लाख और हरड़ को सोलह गुने जल में भिगोकर उस

जल से पैरों को धोने और उसमें कुछ देर तक डुबो रखने से इस रोग में विशेष लाभ होता है। इस रोग में सदा इस बात का ध्यान रहे कि पानी, कीचड़ या सड़ी-गली जगहों में पैर न रक्खा जाय।

साधारण खुजली—(१) अमलतास के मकोय तथा कनेर के पत्ते मठे के साथ पीस कर रख ले। पहले शरीर में सरसों के तेल की मालिश कर, फिर इसका लेप करने से बहुत लाभ होता है।

(२) दूब, हरड़, सेंधा नमक, पनवाड़ के बीज और तुलसी के पत्ते इनको काँजी में पीस कर शरीर में मलने से खुजली अच्छी हो जाती है।

(३) लाल चन्दन और दारुहल्दी को चन्दन की तरह घिस कर उसमें मक्खन मिला, शरीर में मलने से साधारण खुजली बन्द हो जाती है। कभी-कभी छिपे हुए पामा के दोष ही शरीर में खुजली पैदा करते हैं, ऐसी दशा में पूर्वोक्त पामा रोग की ही चिकित्सा करनी चाहिए।

प्रायः खान-पान की ख़राबी से रक्त बिगड़ कर शरीर में खाज पैदा कर देता है। बहुत समय शरीर में मैल के होने से भी खुजली हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले मनुष्य को रोग के कारण का त्याग करना चाहिए, तभी चिकित्सा सफल हो सकती है।

रक्त-शोधक क्वाथ—हरड़, मुण्डो, सनाय, उसवा, अनन्त-मूल, चिरायता इन औषधियों को समभाग में दो तोला लेकर आध सेर जल में एक छटाँक बाक़ी रख कर क्वाथ बना ले। इसे

छान कर प्रति दिन प्रातःकाल पीने से साधारण रक्त-दोष दूर हो जाता है।

अपथ्य—चर्म-रोग वाले को तेल, मिर्च, खटाई, अचार, गुड़, गरम व तेज़ मसाले, काँजी, सिरका, राई, मठा, दही आदि पदार्थ न खाने चाहिए।

शीत-पित्त रोग या पित्ती

यह रोग साधारणतः ठण्डी तथा गर्म चीज़ों के खाने और क़ब्ज़ के होने से पैदा होता है। इसमें सम्पूर्ण शरीर में खाज के साथ छोटी-छोटी लाल रङ्ग की फुन्सियाँ पैदा हो जाती हैं और शरीर में सूजन आ जाती है। खुजली इस क़िस्म की पैदा होती है, जैसे किसी ने शरीर में कौंच लगा दिया हो। दूसरी प्रकार की पित्ती में शरीर में मोटे-मोटे लाल रङ्ग के अत्यन्त खुजली के साथ ददोरे या चकत्ते पड़ जाते हैं। इसमें मनुष्य का मुँह तथा शरीर सूज कर कुष्टी के शरीर के सदृश मालूम पड़ने लगता है। यह रोग उपेक्षा करने से कुछ दिनों बाद रक्त-विकृति पैदा करता हुआ कुष्ठ रोग में परिणत हो जाता है। इस रोग के उत्पन्न होते ही पहले कोष्ठ-शुद्धि की विशेष आवश्यकता है। कोष्ठ-शुद्धि हो जाने पर खून का उबाल कम पड़ जाता है। रोग को निर्मूल करने के लिए निम्नलिखित औषधि सेवन करनी चाहिए:—

(१) दूब तथा हल्दी को पीस कर लेप करने से कच्छूपामा, कृमि, दद्रु तथा शीत-पित्त रोग दूर हो जाते हैं।

(२) मक्खन को ठण्डे जल में सौ बार धोकर थोड़ा

कपूर मिला कर शरीर में लेप करने से शीत-पित्त रोग दूर हो जाता है।

(३) सेई के काँटों को ओढ़कर शरीर को धूप देने से बहुत शीघ्र पित्ती शान्त हो जाती है।

(४) नीम के पत्तों के चूर्ण को घी अथवा आँवले के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से शीत-पित्त रोग के चकत्ते, खुजली, विस्फोटक आदि रोग शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

(५) गिलोय, अड्सूसे की छाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, सतोने की छाल, खैर की छाल, काला वेत, नीम के पत्तें, हल्दी और दारुहल्दी इन औषधियों को मिलाकर दो तोला परिमाण में आधा सेर जल में पकाकर क्वाथ बना ले। इस क्वाथ के पीने से शीत-पित्त, वीसर्प विस्फोट आदि रक्त-विकृति के रोग नष्ट हो जाते हैं।

रक्त-पित्त-रोग

यह रोग दो प्रकार का होता है—पहला ऊपर को निकलने वाला (मुख और नाक से खून का निकलना), दूसरा गुदा और मेढ्र-इन्द्रिय तथा योनि से निकलने वाला। तेज, गर्म, खट्टी और चरपरी चीज़ों के अधिक खाने तथा घाम में या आग के पास बैठ कर काम करने से साधारणतः यह रोग उत्पन्न होता है, इसलिए इस रोग में साठी चावलों का भात, कोदों, कगुनी, साँवाँ आदि हलके पदार्थों का भोजन करना चाहिए। दाल के लिए मसूर, मूँग, चने, मोठ और अरहर; शाकों में परवल, बथुआ, चौलाई, लौकी आदि सेवन करनी चाहिए। रक्त-पित्त की साधारण अवस्था अर्थात् मुँह या नाक से निकलने वाले ख़ून में निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। अधोग रक्त-पित्त तथा अनेक उपद्रवयुक्त रक्त-पित्त में किसी योग्य वैद्य की चिकित्सा करनी चाहिए।

औषधोपचार—(१) ऊर्ध्वग रक्त-पित्त में यदि रोगी दुर्बल न हो, तो दो-एक लङ्घन देकर हलका सा एक विरेचन देना चाहिए।

(२) अड़ूसे के पत्तों का रस एक तोला, शहद छः माशा और चीनी छः माशा मिलाकर पिलाना चाहिए।

(३) अड़ूसे के क्वाथ में नील कमल, प्रियङ्गु, लोध, रसोत, कमल-केशर, चीनी और शहद मिलाकर सेवन करने से दोनों तरह का रक्त-पित्त बन्द हो जाता है।

(४) अड़ूसे की छाल, किशमिश और हरड़ इनका क्वाथ बनाकर शहद और चीनी मिलाकर पीने से रक्त-पित्त व श्वास-कास रोग दूर होते हैं।

(५) नाक से अधिक खून निकलने पर चीनी मिलाकर जल अथवा दूध का नस्य लेना चाहिए। किशमिश या ईख का रस अथवा मक्खन का नस्य लेने से नाक से बहने वाला रक्त (नक्सीर) बन्द हो जाता है।

(६) नाक से खून निकलने पर आँवलों को घी में भून कर और काँजी के साथ पीसकर सिर में लेप करने से नक्सीर बन्द हो जाती है।

(७) चार रत्ती फिटकरी को एक तोला जल के साथ पीस कर चार-चार बूँद नाक में डालने से नक्सीर बन्द हो जाती है।

(८) वासाघृत—अड़ूसे की जड़, पत्ते, फूल तथा शाखा सब मिलाकर चार सेर को सोलह सेर पानी में पका कर चार सेर बाक़ी रहने पर उसमें एक सेर घी और पाव भर ताज़े अड़ूसे के फूलों का कल्क डालकर धीरे-धीरे घृत पका ले। इस घृत को प्रति दिन छः

माशा के परिमाण में लेकर उसके बराबर शहद मिलाकर सेवन करने से पुरातन व नवीन रक्त-पित्त शान्त हो जाते हैं।

इस रोग में शास्त्रोक्त कूष्माण्ड पाक, शतावरी घृत, दूर्वादि घृत, वासा खण्ड आदि औषधियों के प्रयोग करने से सब प्रकार का रक्त-पित्त रोग नष्ट हो जाता है।

हिस्टीरिया
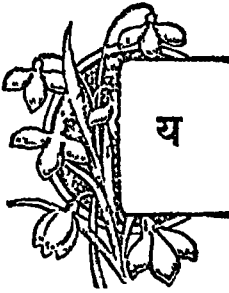
यह रोग पुरुषों की अपेक्षा साधारणतः स्त्रियों को ही अधिक होता दिखाई देता है। इस रोग का मूल कारण मन की कमजोरी के साथ दुख, शोक, चिन्ता आदि की अधिकता है। यद्यपि यह रोग लक्षणों से भयानक प्रतीत होता है, किन्तु प्राणहारी व्याधि नहीं है; क्योंकि इस रोग में मृगी रोग वाले की तरह जल में डूबने, आग में पड़ने और छत से गिरने की आशङ्का नहीं रहती। इसमें मूर्च्छा (बेहोशी) प्रायः चिरकाल तक रहती है और हाथों की मुट्ठियाँ बँध जाती हैं तथा दाँत जकड़ जाते हैं। होश आने के पहले स्त्री अनेक बार थोड़ी देर के लिए बड़ी जोर से चीख़ मारती है और कहीं-कहीं काँपती हुई भी देखी गई है। इसके सिवाय कहीं-कहीं भूत-ग्रस्तों के सदृश अद्भुत लक्षण दिखाई देते हैं। किन्तु इन भयानक लक्षणों को देख कर डरना न चाहिए; क्योंकि ये सब लक्षण हिस्टीरिया में उत्पन्न होते हैं। बहुत सी स्त्रियों को मासिक-धर्म की ख़राबी से भी यह रोग उत्पन्न हुआ देखा गया है। ऐसे स्थानों में रजोदोष की चिकित्सा करना मुख्य कर्त्तव्य है।

साधारण व्यवस्था—इस रोग की मूर्च्छा हटाने अथवा हाथ-पाँव या दाँतों को खोलने के लिए विशेष प्रयत्न या जोर न करना चाहिए। अधिक मूर्च्छा होने पर विशेष डर नहीं; क्योंकि कुछ देर बाद स्त्री को स्वतः होश आ जाता है। यदि आवश्यकता हो तो मुख में ठण्डे जल की दो-चार बार अञ्जलि द्वारा जोर से छींटें मारनी चाहिए और मूर्च्छा शान्त करने के निमित्त निम्न-लिखित दो औषधियों में से किसी एक का प्रयोग करना चाहिए। रोग-शान्ति के निमित्त निम्नलिखित बहुत से योग अलग लिखे हैं। किन्तु इस रोग में यह विशेषता है कि रोगी के लिए हर समय आदर के साथ बातचीत करने या रखने से इस रोग में बहुत कमी होती है। इसलिए रोगी के प्रति सदा शान्त और प्रेम का बर्ताव करना चाहिए। हल्दी, मिर्च या काग़ज़ का धुआँ अथवा चूना और नौसादर मिलाकर रोगी को तत्काल सुँघाने से होश आ जाता है। इस रोग में इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि मासिक-धर्म की खराबी तथा दुर्बलता की योग्य चिकित्सा होने पर मूर्च्छा की शान्ति स्वतः ही हो जाया करती है।

औषधि-प्रयोग—(१) मूर्च्छा हटाने के लिए तुलसी के पत्तों के रस में काली मिर्च के चूर्ण को सात बार भावना देकर सुखा ले, इस चूर्ण का नस्य लेने से प्रायः मूर्च्छा हट जाती है।

(२) अपामार्ग की जड़ और काली मिर्च दोनों को समभाग में पीस, कपड़े से छान ले। इस चूर्ण के नस्य लेने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

(३) रोग-शान्ति के निमित्त जटामासी को सायङ्काल एक छटाँक जल में भिगो दे। प्रातःकाल मसल-छान कर उसमें मिश्री मिला कर पीने से यह रोग शान्त होता है।

(४) अपामार्ग की गीली जड़ एक तोला और तीन-चार काली मिर्च घोट कर प्रातःकाल सात दिन सेवन करने से आश्चर्य-जनक लाभ होता है।

(५) षड्गुणवलि जारित उत्तम मकरध्वज अथवा उत्तम रस सिन्दूर आधी रत्ती और कस्तूरी डेढ़ रत्ती को प्रति दिन सायङ्काल में जटामासी या त्रिफला को भिगो कर सुबह छान, उसमें शहद मिला सेवन करने से भी विशेष लाभ होता है।

हिस्टीरिया रोग में शास्त्रोक्त रसराज रस, कृष्ण चतुर्मुख आदि औषधि तथा मासिक-धर्म की ख़राबी के साथ रजः प्रवर्त्तिनी वटी या रजः कल्याण वटी विशेष उपकार वाली हैं।
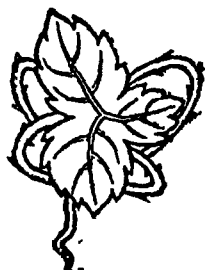
स्त्री-रोग

यों को ऋतुकाल के नियमों का ठीक पालन न करने से ही प्रधानतः वाधक तथा अन्यान्य जरायु (योनि) सम्बन्धी रोग पैदा हो जाते हैं। इसलिए ऋतुकाल में आवश्यक पालनीय शास्त्रोक्त तीन प्रकार के नियम नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) स्नान करना, कपड़े धोना और हर प्रकार की ठण्ढ से पूरा परहेज़ करना चाहिए। अतएव हाथ-पैर धोने के लिए गर्म जल का व्यवहार करना चाहिए।

(२) रोटी पकाना या आग के पास बैठे रहना अत्यन्त हानिकारक है।

(३) पहले चार दिनों के अन्दर पति के साथ एक शय्या पर सोना शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

प्रदर तथा रक्त-प्रदर अनेक कारणों से पैदा होते हैं। ये रोग शारीरिक दुर्बलता, अधिक मैथुन, जरायु रोग, अधिक क़ब्ज़ और प्रमेह रोग वाले पुरुष के साथ सहवास करने आदि से पैदा जाते हैं। इसलिए इन रोगों में कारण को देख कर, उसको हटाने तथा रोग-शान्ति का उपाय करना चाहिए। इन रोगों में ठीक

संयम में योग्य तथा वलकारक आहार और औषधि का सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है।

औषधि-प्रयोग—(१) सत्यानाशी की जड़ एक तोला और अजवायन छः माशे पीस, गर्म कर और गुड़ मिलाकर पीने से ऋतु के चार दिनों में रोग की प्रवलता के अनुसार प्रति दिन एक-दो वार सेवन करने से वाधक रोग में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

(२) मालकाँगनी के पत्तों को घी में भूनकर एक तोला प्रति दिन सेवन करने से वाधक रोग शान्त होता है।

(३) गुड़हल के फूलों को काँजी में पीसकर चार दिन पर्यन्त ऋतुकाल में सेवन करने से वाधक रोग में विशेष उपकार होता है।

(४) मुसव्वर, हीरा कसीस, सोहागा और सोए के वीज प्रत्येक एक-एक तोला, हींग दो तोला इन सवको कुमारी (क्वारपाठा) के रस में घोट, चने के वरावर गोली वना ले। दो गोली प्रति दिन ऋतुकाल में गर्म जल के साथ सेवन करने से मासिक स्राव के विकार दूर होकर वाधक रोग में विशेष उपकार होता है।

(५) सेमल के सूखे हुए फूलों का चूर्ण चार माशे और चीनी चार माशे मिला कर सेवन करने से श्वेत व रक्त दोनों प्रकार का प्रदर शान्त होता है।

(६) रोहिण्डा के मूल की छाल के कल्क अथवा आँवले के वीज की गिरी के कल्क को शहद या चीनी अथवा धाय के फूल केसाथ सेवन करने या आमलों के कल्क के साथ शहद सेवन करने

से और काकजङ्घा व कपास की जड़ के कल्क या चूर्ण को चावलों के जल के साथ सेवन करने से श्वेत प्रदर नष्ट हो जाता है।

(७) दारुहल्दी, रसोत, अडूसे की छाल, मोथा, चिरायता तथा शुद्ध भिलावा इन औषधियों का यथाविधि काढ़ा बना, उसमें शहद मिलाकर सेवन करने से शूलयुक्त, तीव्र वेग वाला पीत तथा काला, अरुण, लाल, नील और सफ़ेद रङ्ग का प्रदर रोग तत्काल ही नष्ट हो जाता है।

(८) कुशा की मूल को उखाड़ कर पहले पानी से धो डाले, फिर चावलों के जल के साथ पीस कर केवल तीन दिन तक सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट हो जाता है।

(९) एक तोले धाय के फूल को कच्चे दूध के साथ पीस और शहद मिलाकर प्रति दिन एक-दो बार पिलाने से श्वेत प्रदर में विशेष उपकार होता है।

(१०) अशोक, मौलसिरी, आँवला, बरगद, गूलर और कदम्ब की छाल तथा नागकेशर को जौकुट कर, दो तोला लेकर क्वाथ बना ले। ठण्ढा होने पर शहद मिलाकर प्रति दिन दो बार पिलाने से श्वेत प्रदर में विशेष लाभ होता है।

(११) दारुहल्दी, कदम्ब तथा अडूसे की छाल, नागरमोथा, चिरायता, बेल-गिरी, लाल चन्दन और खरेटी का पूर्ववत् क्वाथ बनाकर चीनी के साथ सेवन करने से पुराने श्वेत प्रदर में विशेष लाभ होता है।

(१२) लाख एक तोला, अशोक की छाल छः माशे और

सोंचरस छः माशे को आधा सेर जल में पका कर आध पाव रहने पर छान ले। ठण्ढा होने के बाद आध पाव ताजा दूध और थोड़ी मिश्री मिला कर प्रति दिन दो बार पीने से रक्त-प्रदर में शीघ्र लाभ होता है।

(१३) अनार के तीन-चार फूल को कच्चे दूध के साथ पीस, शहद मिला कर प्रति दिन दो बार सेवन करने से रक्त-प्रदर में विशेष लाभ होता है।

(१४) सरपोंखे की जड़ को चावलों के जल के साथ पीस कर सेवन करने से रक्त-प्रदर दूर हो जाता है।

इस रोग में पथ्यापथ्य का प्रयोग प्रायः रक्त-पित्त के सदृश समझना चाहिए। इसकी पुरानी तथा नवीन अवस्था में अशोक घृत, शीत कल्याणक घृत तथा पुष्पानुग चूर्ण और प्रदरान्तक रस सेवन करना चाहिए तथा पुरानी हालत में पटोलादि क्वाथ और पञ्चक्षीरी क्वाथ का प्रयोग करना चाहिए।

गर्भिणी-चिकित्सा

यों के लिए गर्भावस्था एक अत्यन्त सङ्कट-मय समय है, इसलिए इन दिनों अधिक शारीरिक परिश्रम, अग्नि तथा शीत-सेवन, कुसमय भोजन, रात्रि को जागरण, रेल अथवा गाड़ियों की सवारी आदि सर्वथा हानिकारक और त्याज्य हैं। गर्भिणी को बहुत तेज तथा गर्म औपधियों का देना भी निषेध है; क्योंकि इन कारणों से अनेक बार गर्भपात और मासिक स्राव हो जाता है।

गर्भ की अवस्था में ज्वर, अतिसार, नाभि के नीचे दर्द, हाथ-पैरों में सूजन और मूत्र की कमी, इन सब पीड़ाओं में से किसी एक के होने पर गर्भपात या स्राव होने की विशेप आशङ्का रहती है। रक्त-स्राव आरम्भ होने से भी विशेष रूप से गर्भपात होने की सम्भावना रहती है, इस बात का ज्ञान सर्व-साधारण को होता है। शोथ और मूत्र की कमी होने से प्रसव (बच्चा होना) होने के पहले ही भयङ्कर मूर्च्छा और आक्षेप (Eclampsia) होने से गर्भिणी का प्राणान्त हो जाता है। इसलिए ऐसी दशा में पहले ही किसी योग्य वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिए।

यद्यपि गर्भावस्था में अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होते हैं, परन्तु उन सबको इस पुस्तक में विस्तार-भय के कारण और उनकी चिकित्सा विना वैद्य की सहायता के कठिन होने के कारण न लिखते हुए उनमें से कतिपय उपद्रवों की चिकित्सा लिखी जाती है। यदि निम्नलिखित प्रयोगों से लाभ न हो, तो योग्य वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिए।

औषधि-प्रयोग—गर्भावस्था में रक्त-स्राव या गर्भ-स्राव अथवा पात होने पर निम्नलिखित औषधियाँ प्रत्येक मास के अनुसार डेढ़ पाव जल तथा आध पाव दूध में पकाकर दूध बाक़ी रहने पर छान कर चार-पाँच घण्टे के अन्तर से पिलाना चाहिए:—

(१) पहले महीने में रक्त-स्राव या पात होने पर—मुलहटी, सागौन के बीज, क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध) और देव-दारु मिलाकर दो तोले के परिमाण में लेकर पूर्वोक्त रीति से पका कर पिलाना चाहिए।

(२) द्वितीय मास में—सफ़ेद फूल का कचनार, काले तिल, मजीठ और शतावर सब को मिला, दो तोला पकाकर पिलाना चाहिए।

(३) तृतीय मास में—बाँदा या गिलोय, क्षीर काकोली, नील कमल तथा अनन्तमूल मिला कर दो तोला पका कर देना चाहिए।

(४) चतुर्थ मास में—अनन्त मूल, श्यामलता (काली अनन्तमूल) रास्ना, भारङ्गी तथा मुलहटी सबको मिला, दो तोला पका कर देना चाहिए।

(५) पञ्चम मास में—बड़ी-छोटी कटेरी, गम्भारी का फल, वड़ की कोंपल, दालचीनी और गो-घृत मिला, दो तोला पका कर देना चाहिए।

(६) षष्ट मास में—पृष्टपर्णी, खरेंटी की जड़, सहिजन की जड़ और मुलहटी दो तोला पका कर देना चाहिए।

(७) सप्तम मास में—सिंघाड़ा, विष (भिस-मृणाल) किशमिश, कसेरू, मुलहटी और चीनी मिला कर दो तोला देना चाहिए।

(८) अष्टम मास में—कैथ तथा वेल की छाल, वड़ी कटेरी, पटोलपत्र, काले गन्ने की जड़ और छोटी कटेरी की जड़ दो तोला पका कर देना चाहिए।

(९) नवम मास में—मुलहटी काली सफ़ेद दोनों, अनन्त-मूल, क्षीर काकोली दो तोला पका कर देना चाहिए।

गर्भपात रोकने तथा गर्भावस्था में ज्वर, अतिसार, हाथ-पैरों की सूजन आदि के लिए निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहिए:—

(१) जिस समय कुम्हार हाँडी तैयार करता है, उस समय उसके हाथ में लगी हुई मिट्टी में एक प्रकार की आश्चर्यजनक शक्ति पैदा होती है। ऐसी मिट्टी एक तोला, वकरी का दूध आध पाव और शहद छः माशा मिलाकर पिलाने से गर्भपात की सम्भावना में आशातीत फल देखा गया है।

(२) कसेरू, सिंघाड़ा, क्षीर काकोली, मूँगपर्णी, माषपर्णी; शतावर, विदारीकन्द, जावित्री, मुलहटी, कमल-केसर, कमल

की जड़, एरण्ड की जड़ इन औषधियों को समभाग में मिलाकर चार तोले लेकर आध सेर जल तथा आध पाव दूध में पकाकर दूध मात्र अवशेष रहने पर छानकर दो तोला मिश्री या चीनी मिलाकर हर दो घण्टे के बाद दिन में चार बार पिलाने से गर्भ का असामयिक दर्द, रक्त-स्राव आदि विकार शान्त हो जाते हैं।

(३) लाल चन्दन, अनन्तमूल, लोध, किशमिश सबको दो तोला परिमाण में लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बना, चीनी मिलाकर प्रति दिन एक-दो बार सेवन करने से शीघ्र ही गर्भिणी का पित्त-प्रधान ज्वर शान्त हो जाता है।

(४) एरण्ड की जड़, गिलोय, मजीठ, लाल चन्दन, देवदारु और पद्माख सबको दो तोला परिमाण में लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पीने से गर्भिणी का पुराना ज्वर शान्त हो जाता है।

(५) साधारण नवज्वर के प्रकरण में लिखे हुए किरातादि क्वाथ अथवा बृहत्पञ्चमूल क्वाथ सेवन करने से गर्भिणी के ज्वर में विशेष लाभ होता है। मलेरिया ज्वर होने पर अमृतारिष्ट का सेवन करना चाहिए।

(६) आम की छाल एक तोला और जामुन की छाल दो तोला आधा सेर जल में पकावे। आध पाव बाक़ी रहने पर थोड़ा बकरी का दूध और मिश्री मिला कर पिलाने से गर्भिणी के अतिसार में विशेष लाभ होता है।

(७) नेत्रबाला, आलू, लाल चन्दन, धनिया, गिलोय, ख़स, नागरमोथा, खरेंटी, जवासा, पित्तपापड़ा और अतीस इन सबको

मिलाकर दो तोला परिमाण में लेकर विधिपूर्वक क्काथ बनाकर पीने से गर्भिणी के अनेक प्रकार के उदर-रोग शान्त होते हैं।

(८) गर्भावस्था में प्रवाहिका और रक्त-प्रवाहिका होने पर विशेष असावधानी न करनी चाहिए। इसके लिए पूर्व-लिखित उदर-रोग-प्रकरण की औषधियों का प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

(९) पुनर्नवा, गोखरू, सूखी मूली और सोंठ प्रत्येक को आधा-आधा तोला परिमाण में लेकर आधा सेर जल में पका, आध पाव बाक़ी रहने पर प्रति दिन दो-तीन बार पिलाने से गर्भिणी के हाथ-पैरों के शोथ तथा अल्प मूत्र-रोग में विशेष लाभ होता है।

(१०) गोखरू दो तोला, दूध एक सेर, जल एक सेर तीनों को मिलाकर पकाए, और एक सेर बाक़ी रहने पर छान कर रख ले। इस दूध को दिन में थोड़ा-थोड़ा करके पीना चाहिए। शोथ की बढ़ी हुई हालत में इसी तरह दूध पका कर रात्रि को भी थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए। शोथ में जल और नमक बन्द रखना चाहिए। आवश्यकता होने पर बहुत कम परिमाण में देना चाहिए। जल तथा अन्यान्य आहार के विषय में पूर्वोक्त प्रकार से दूध पिलाने पर गर्भिणी का शोथ शीघ्र ही शान्त हो जाता है। आरोग्य होने के बाद भी कुछ दिन तक दूध का अधिक सेवन करना चाहिए।

गर्भावस्था में कोई भयङ्कर रोग उत्पन्न होने में और प्रसव-काल के समय साधारण रूप से कष्ट होने पर किसी योग्य वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिए। नीच जाति की मूर्खा स्त्रियों के द्वारा रोगिणी के जरायु आदि यन्त्रों की परीक्षा कराना अत्यन्त

हानिकारक है। सूतिकागार उच्च और सूखे स्थान पर, जहाँ कि शुद्ध वायु का सञ्चार होता हो, बनाना चाहिए। प्रसव के समय या बाद में मैले-कुचैले चीथड़े या कपड़े सूतिका के काम में न लाने चाहिए; क्योंकि इनसे वायु दूषित होकर जच्चा के प्राणों को सङ्कट-मय बना देती है। बड़े दुख की बात है कि देश की स्त्रियाँ और अशिक्षित पुरुष इस बात को नहीं जानते, जिससे प्रायः ऐसी दुर्घटनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। सूतिका के व्यवहार के लिए शुद्ध रूई अथवा साफ़ धुले हुए कपड़े होने चाहिए।

बाल-चिकित्सा

च्चों का पालन-पोषण और चिकित्सा करना, कोई सहज बात नहीं है। माता के स्तनों में अधिक दूध होने पर तथा उसका स्वास्थ्य अच्छा होने पर बच्चा प्रायः नीरोग और स्वतः हृष्ट-पुष्ट होता है। ग़रीब और दरिद्र लोगों के बच्चे इसी वास्ते प्रायः बलवान् और कष्ट सहन करने वाले होते हैं। स्तनों में दुग्ध के न होने पर बच्चे का पालन-पोषण करने में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। जब तक कि दाँत न निकलें, बच्चे के केवल दूध या बार्ली तथा अरारोट-मिश्रित दूध देना अच्छा नहीं है। इस प्रकार के आहार से बच्चों को प्रायः अतिसार, ज्वर, अस्थि-शोष और यकृत्-वृद्धि आदि भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

स्तनों में दुग्ध का अभाव होने पर मेलिंस फूड आदि अवस्थानुसार सेवन कराना चाहिए अथवा देशी रीति से पकाया हुआ दूध देना चाहिए। दूध के बराबर जल मिलाकर एक उबाल देकर ठण्डा कर ले। इस जल-मिश्रित दूध को पिलाने के समय प्रति

छटाँक में आधा तोला के हिसाब से शहद मिला ले। शहद मिले हुए दूध को कभी गर्म न करना चाहिए। बहुत से मनुष्यों का ऐसा विचार है कि जल मिले हुए दूध के पीने से बच्चों को सर्दी हो जाती है; परन्तु यह बात सर्वथा ठीक नहीं है। यदि किसी बच्चे को इस दूध से सर्दी मालूम पड़े, तो पकाते समय उसमें एक छोटी पीपल अथवा सोंठ का टुकड़ा डालकर पकाना चाहिए। इस तरह दूध जल्दी पच जाता है और सर्दी का भय नहीं रहता।

बच्चे को बहुत जल्दी-जल्दी दूध पिलाना अच्छा नहीं है। तीन-चार महीने के बालक को दिन में दो-दो घण्टे के और रात्रि में चार-चार घण्टे के अन्तर से दूध पिलाना अच्छा है। चार महीने के बाद दिन में तीन-चार घण्टे पीछे और रात्रि में नींद आने के बाद न पिलाना चाहिए। बहुत सी स्त्रियाँ बच्चे के रोने पर उसे दूध पिला देती हैं; परन्तु ऐसा करना अच्छा नहीं है। अनेक समय बालक प्यास लगने के कारण रोता है, इसलिए उसे बीच में थोड़ा-थोड़ा ठण्ढा जल पिलाना चाहिए। कभी-कभी पेट में दर्द आदि होने से बच्चा रोया करता है, इसलिए ऐसे समय में दूध पिलाना अत्यन्त हानिकारक है।

बच्चा एक बार में जितना दूध रुचि के साथ पी ले, उससे अधिक न पिलाना चाहिए। परन्तु बहुत सी स्त्रियों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे जब तक बच्चे का पेट खूब फूल न जाय, दूध पिलाती रहती हैं। इससे बहुत हानि होती है।

बच्चों को दूध पिलाने के लिए आजकल घर-घर में काँच की शीशियाँ प्रचलित हैं। इनको फीडिङ्ग बोतल (Feeding Bottle) कहते हैं। इन शीशियों को हर एक मनुष्य साफ़ नहीं रख सकता, इस कारण उसमें रक्खा हुआ दूध ख़राब हो जाता है, और बच्चे को नहीं पचता। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शीशी साफ़ रहे। बच्चे को रूई के फाहे या छोटी चमची से दूध पिलाना बहुत अच्छा है।

बालकों की स्वास्थ्य-रक्षा के निमित्त उनके ओढ़ने-बिछौने तथा पहिनने के कपड़ों को सदा साफ़ रखना चाहिए। ठण्ढ व वर्षा के दिनों में एकाएक ठण्ढ से बचाने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

साधारण व्यवस्था—बच्चे के शरीर में किसी प्रकार का कोई रोग उत्पन्न होने पर पहले उसके कारण का अच्छी तरह विचार कर उसके मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्वर तथा पेट की ख़राबी ही बालकों के साधारणतः प्रधान रोग हैं। इन अवस्थाओं में दूध कैसा और कितनी देर के बाद पिलाना, और वह जीर्ण होता है कि नहीं, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जुक़ाम, खाँसी या अन्य किसी रोग के होने पर ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे बच्चे के पेट की ख़राबी मिट जाय।

ज्वर आदि रोग में बच्चे को पाँच-सात घण्टे से अधिक उपवास नहीं कराना चाहिए। पेट की अधिक ख़राबी में पतला-पतला अरारोट का जल बनाकर देना चाहिए; मगर इस बात का

भी ध्यान रहे कि दूध एकदम बन्द न कर दिया जाय। पेट के विकार में अरारोट के जल के साथ थोड़ा-थोड़ा बकरी का दूध देते रहना चाहिए। मूर्खा स्त्रियों तथा मूर्ख वैद्यों की बात सुन कर हर एक अनजान औषधि न देनी चाहिए। यदि सावधानी से केवल पथ्यादि का सुप्रबन्ध किया जाय, तो बच्चों के रोग अपने आप ही मिट जाते हैं; किन्तु कुचिकित्सा करने या कराने से रोग बढ़ने की सम्भावना रहती है, अतः किसी योग्य वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिए।

औषधि—(१) साधारण ज्वर, खाँसी, जुक़ाम में काकड़ासिंगी आध रत्ती, नागरमोथा दो रत्ती और अतीस आध रत्ती लेकर इनका बारीक चूर्ण शहद के साथ एक-दो दिन चटाने से बहुत लाभ होता है।

(२) छोटी पीपल का चूर्ण एक रत्ती और अतीस का चूर्ण आध रत्ती शहद के साथ तीन-चार घण्टे के अन्तर से चटाने से ज्वर, खाँसी, जुक़ाम आदि रोग दूर हो जाते हैं।

(३) साफ़ और शुद्ध नौसादर एक रत्ती, पीपल का चूर्ण दो रत्ती दोनों को तुलसी के पत्तों के रस के साथ गर्म करके तीन-चार घण्टे के बाद खिलाने से बच्चों की कूकर-खाँसी तथा श्वास-रोग में विशेष लाभ होता है।

(४) बच्चों की छाती में सर्दी लग जाने पर प्याज़ या अदरक के रस के साथ पुराने घी अथवा पुराने सरसों के तेल को पकाकर मालिश करने से छाती में चिपका हुआ कफ पतला हो कर निकल जाता है।

(५) आधी छटाँक बुझा हुआ चूना एक तोला शहद के साथ आध पाव जल में घोलकर रख दे। जब सब चूना नीचे बैठ जाय, तब ऊपर के साफ़ जल को एक शीशी में रख दे। इस जल की पाँच से लेकर दस बूँद तक दूध के साथ मिलाकर पिलाने से बच्चों के खट्टे गन्ध वाले दस्त तथा उलटी बन्द हो जाती है।

(६) नागरमोथा, पीपल, काकड़ासिंगी और अतीस प्रत्येक एक-एक रत्ती लेकर, शहद के साथ चार-पाँच घण्टे के अन्तर से सेवन कराने से बच्चों का ज्वरातिसार तथा वमन होना बन्द हो जाता है। इस योग को जुक़ाम और खाँसी में भी दे सकते हैं।

(७) आम की गुठली की मींगी और खीलों का चूर्ण प्रत्येक एक-एक माशा तथा सेंधा नमक पाँच रत्ती एकत्र कर रख ले, इसे थोड़ा-थोड़ा शहद के साथ चटाने से बच्चों की उलटी शीघ्र ही बन्द हो जाती है।

(८) नागरमोथा, अतीस, सोंठ, नेत्रवाला, इन्द्रजौ सब मिला कर दो तोला लेकर आध सेर जल में आध पाव बाक़ी रहने तक पका कर छान ले, इस क्वाथ में से एक चम्मच बच्चे को पिलाकर शेष दूध पिलाने वाली माता को पिला दे। इस प्रकार प्रति दिन प्रातःकाल पिलाने से बच्चों के क़ै-दस्त बन्द हो जाते हैं।

(९) कुड़े की जड़ की छाल चार रत्ती को धोए हुए चावलों के पानी की सहायता से पीस कर शहद के साथ खिलाने से बच्चों के दस्त तथा आँव-रक्त में विशेष लाभ होता है।

(१०) बेल की गिरी, इन्द्रजौ, नेत्रवाला, मोचरस और नागर-

माथा सब मिला कर एक तोला एक पाव बकरी के दूध और आध सेर जल में पकावे जब दूध मात्र बाक़ी रहे, तब छान कर ठण्डा कर ले, इस दूध के तीन-चार बार पिलाने से बच्चों के पुराने दस्त और आँव-रक्त रोग में विशेष लाभ होता है।

(११) जायफल, लौंग, जीरा और सोहागे की खील सम भाग में चूर्ण कर दो-तीन रत्ती की मात्रा में शहद मिलाकर चटाने से बच्चों का आमातिसार और आमशूल रोग शान्त हो जाता है।

अनेक समय बच्चों के दाँत निकलने के पहले ज्वर, सर्दी, खाँसी, पेट में दर्द और दस्त आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में ऊपर लिखे हुए प्रयोगों से चिकित्सा करनी चाहिए। और बच्चों के मुँह के छाले, कण्ठ-रोग, नेत्र-रोग, खुजली आदि के लिए उन पिछले प्रकरणों में लिखे हुए प्रयोगों से चिकित्सा करनी चाहिए। यदि बच्चों के रोग में कुछ कठिनाई प्रतीत हो, तो उनकी चिकित्सा किसी योग्य वैद्य या डॉक्टर द्वारा करानी चाहिए।

दैवी दुर्घटना

संसार में रहते हुए दैवी आपत्तियों का आना स्वाभाविक बात है, इसलिए प्रत्येक गृहस्थ को दैवी विपत्ति के प्रतिकार के उपायों को कुछ न कुछ अवश्य जानना चाहिए। यहाँ पर कुछ दैवी दुर्घटनाओं की सरल चिकित्सा संक्षेप से लिखी जाती है।

अग्नि-दाह—यदि अकस्मात् शरीर के कपड़े आदि में आग लग जाय, तो पहले उसके बुझाने की चेष्टा न करनी चाहिए, बल्कि कपड़ों को निकाल कर फेंकना अथवा चीर कर निकाल देना चाहिए। यदि खुलने में कठिनाई हो तो किसी मोटे कपड़े या कम्बल से शरीर को चारों तरफ़ से ढँक कर एकदम दबा देना चाहिए। इस प्रकार कपड़ों में लगी हुई अग्नि शीघ्र ही शान्त हो जाती है। अग्नि बुझने के बाद दाह-शान्ति के लिए निम्नलिखित कोई भी उपाय करना चाहिए। बहुत से लोग जले हुए स्थान में कीचड़ आदि किसी प्रकार की मलिन चीज़ का लेप करते हैं; परन्तु यह अत्यन्त हानिकर है।

(१) जले हुए स्थान में आलू को चन्दन की तरह घिस-कर लेप करने से दाह की जलन शीघ्र ही शान्त हो जाती है।

(२) असली शहद या शराब के लगाने से अथवा ककरौंदे के पत्तों का रस लगाने से दाह की जलन शान्त हो जाती है।

(३) नारियल का तेल और चूने का साफ़ निथारा हुआ पानी दोनों को ख़ूब फेंट कर लगाने से तत्काल दाह शान्त हो जाता है।

(४) जलन शान्त होने के बाद जले हुए स्थान में लौंची और ताज़ा घी अथवा साफ़ एरण्ड का तेल लगाना चाहिए। घी में नीम के पत्तों को भून कर छान ले। इस घी को जले हुए स्थान पर लगावे। बाद को थोड़ी साफ़ और नई रूई को नीम के जल में पका निचोड़ कर जले हुए स्थान के ऊपर रख एक साफ़ कपड़े से बाँध दे। जला हुआ स्थान कभी खुला न रहना चाहिए। आधा या चौथाई शरीर जल जाने पर तथा मुख, पेट या गुह्य आदि कोमल स्थानों के जलने पर स्वतः चिकित्सा न करके किसी योग्य वैद्य या डॉक्टर से चिकित्सा करानी चाहिए।

रक्तपात—अकस्मात् शरीर में चोट लगने पर कट जाने से निकलते हुए ख़ून को रोकने के लिए एकदम उपाय न करना चाहिए; क्योंकि निकलते हुए ख़ून को एकदम रोक देने से बहुत ख़राबी होती है। साधारणतः कटे हुए स्थान का ख़ून दो-चार मिनिट में अपने आप ही बन्द हो जाता है। ख़ून बन्द करने की आवश्यकता होने पर उसे निम्नलिखित किसी उपाय से बन्द करना चाहिए। ख़ून बन्द होने के बाद एक साफ़ कपड़े अथवा रूई को थोड़ी देर गर्म जल में पकाकर कटे हुए स्थान पर बाँधना चाहिए।

(१) यदि हो सके तो चोट लगे हुए अङ्ग को कुछ देर के लिए ऊपर को उठाए रखना चाहिए।

(२) एक साफ़ कपड़े से दो-तीन मिनिट तक क्षत-स्थान को बन्द करने से खून निकलना बन्द हो जाता है।

(३) अत्यन्त ठण्डा जल अथवा बर्फ़ या अत्यन्त गर्म जल, जितना सहा जाय, प्रयोग करने से रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है।

(४) दूब का रस, केले की जड़ का रस अथवा कच्चे अनार का रस प्रयोग करने से रक्त शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

(५) यदि नाक से अधिक खून निकलता हो, तो रोगी के हाथों को ऊपर उठाकर थोड़ी देर दौड़ाना चाहिए। यदि इससे लाभ न हो, तो सिर में ठण्डे जल की धार अथवा बर्फ़ रखना चाहिए अथवा दूब का रस नस्य-प्रयोग में लाना चाहिए।

खून बन्द करने के लिए रेल का कोयला, मिट्टी या भस्म का प्रयोग न करना चाहिए और न गँदले जल से धोना चाहिए। इन कारणों से अत्यन्त हानि होती है। क्षत-स्थान में पीब के साथ रक्त दूषित होने से कभी-कभी प्राणान्त होने की सम्भावना रहती है।

अधिक खून निकलने अथवा धार बँधकर निकलने पर कटे हुए स्थान को एक साफ़ कपड़े से बाँध देना चाहिए और किसी योग्य डॉक्टर को बुलाकर चिकित्सा करानी चाहिए। यदि हाथ-पैरों में कहीं पर कट गया हो, तो उस स्थान से कुछ ऊपर थोड़ी देर के लिए रस्सी से कस कर बाँध देना चाहिए।

विष-भक्षण—यदि भूल से कभी कोई विषैली चीज़ या अफ़ीम अथवा सङ्खिया आदि विष खा जाय, तो उसी समय ज्ञात हो जाने पर रोगी को वमन कराना चाहिए। वमन के लिए लवण एक छटाँक और सरसों का चूर्ण ढाई तोला मिलाकर आध सेर गरम जल में डाल कर पिलाना चाहिए; और थोड़ी-थोड़ी देर के बाद गरम जल पिलाते रहना चाहिए, अथवा वच और मैनफल का दो तोला चूर्ण आध सेर गरम जल के साथ पिलावे। मछली की टोकरी धोकर उसका जल पिलाने से भी वमन होता है। यदि इतने पर भी वमन न हो, तो तीन माशा तूतिया को सेर भर गरम जल के साथ पिलाकर वमन करावे। अफ़ीम अथवा और कोई प्राणहारी वस्तु के खाने पर परमैंगनेट ऑफ़ पुटाश (Permanganate of Potash) नाम की डॉक्टरी औषधि को छः माशा लेकर दो सेर जल में मिला थोड़ी-थोड़ी देर बाद पिलाता रहे और दस-पन्द्रह मिनिट के बाद गले में उँगली देकर वमन करावे। यह डॉक्टरों या दवा बेचने वालों की दुकान पर असानी से मिलता है, और इसका मूल्य भी बहुत कम होता है। अफ़ीम खाने पर रोगी को चौबीस घण्टे तक सोने न देना चाहिए। इसी प्रकार अन्यान्य विषों की भी चिकित्सा करनी चाहिए। जहाँ तक हो सके रोगी को नज़दीक के अस्पताल में पहुँचाना चाहिए।

सर्प-दंशन—यदि शरीर में किसी जगह साँप के काटने की आशङ्का हो, तो दंशन-स्थान से चार अङ्गुल ऊपर पाँच-पाँच अङ्गुल के अन्तर से दो-तीन स्थानों में बन्धन बाँध देने चाहिए, और दंश को एक

तेज़ चाक़ू या छुरी से चीर कर उसमें परमैंगनेट ऑफ़ पुटाश को भरकर चार-पाँच मिनिट अच्छी तरह रगड़ दे। यह प्रत्यक्ष फल दिखाने वाली विषनाशक, निर्दोष, सस्ती औषधि है। अनेक वार परीक्षा-द्वारा निश्चय किया है कि इस औषधि के ठीक समय (सर्प के काटते ही) प्रयोग करने से सर्प का विष सहज में नष्ट हो जाता है। इसलिए जहाँ पर साँपों का डर अधिक रहता हो, वहाँ तो प्रत्येक मनुष्य यह औषधि संग्रह कर रखनी चाहिए।

निर्विष सर्पों के काटने पर साधारणतः दो नीचे और दो ऊपर चार विन्दुओं के आकार का दंशन-स्थान होता है—विषैले के काटने पर केवल दो विन्दुओं के आकार का दंशन-स्थान होता है। परमैंगनेट पुटाश को दोनों सर्प-दंशों में निःशङ्क प्रयोग कर सकते हैं। सर्प-विष की प्रत्येक अवस्था की विस्तारयुक्त चिकित्सा के लिए हमारी "विष-विज्ञान" नामक पुस्तक देखनी चाहिए।

पागल कुत्ते का विष—सभी कुत्ते तथा सियारों के काटने पर शरीर में विष चढ़ता हो, सो वात नहीं देखी जाती ; किन्तु पागल कुत्ते तथा सियार के काटने पर शरीर में विष चढ़ता है और अन्त में भयङ्कर जल-सन्त्रास (जल के शब्द, स्पर्श तथा देखने से डरना) रोग होकर मृत्यु हो जाती है।

वावले कुत्ते या सियार के काटने पर उसी समय सर्प-विष की तरह दंश से ऊपर वन्धन वाँध, चीरा देकर उसमें परमैंगनेट पुटाश भर देना चाहिए। अथवा दंशन-स्थान को चीर और धोकर तेज़ नाइट्रिक एसिड अथवा कार्वोलिक एसिड या कास्टिक-

लगा देना चाहिए। दंशन-स्थान को चीर कर लोहे की गरम सलाई से जला देना चाहिए। कोई-कोई कहते हैं कि दंशन-स्थान को चीर कर उसमें टिञ्चर आयोडीन लगा देना चाहिए। सभी स्थानों में जानवरों के जितने दूर तक दाँत गड़े हुए हों उतना गहरा चीर कर औषधि लगानी चाहिए, अन्यथा विष दूर होने में आशङ्का रहती है। हो सके तो उसी समय जितने गहरे दाँत लगे हों, उतनी ही गहरी तेज छुरी या चाक़ू से चारों तरफ़ का थोड़ा मांस काट कर निकाल लेना चाहिए।

बावले कुत्ते आदि के विष-लक्षण साधारणतः तीन-चार सप्ताह में प्रकट होते हैं। इसके बाद काटा हुआ मनुष्य एक दिन अत्यन्त ढीला तथा चञ्चल मनोवृत्ति का हो जाता है। उसे खाने-पीने की चीजों के निगलने से गले में कष्ट मालूम होता है और फिर धीरे-धीरे तीन-चार दिन में ज्वर, प्रलाप, भयङ्कर जल-सन्त्रास, सम्पूर्ण कण्ठरोध और शरीर में आक्षेप होने लगते हैं। इन लक्षणों के बाद लगभग एक सप्ताह में मृत्यु हो जाती है। इसलिए बावले कुत्ते आदि के काटने पर अच्छी तरह चिकित्सा करानी चाहिए।

बावले कुत्ते के विष के लिए आयुर्वेद में धतूरे की जड़, अङ्कोल की जड़ आदि कई औषधियाँ लिखी हुई हैं; किन्तु उनके उचित रूप में प्रयोग न होने से विशेष लाभ नहीं होता है। वर्त्तमान समय में हितैषी गवर्नमेन्ट द्वारा स्थापित "पास्तर इन्स्टिट्यूट" नामक चिकित्सालय की चिकित्सा बहु-परीक्षित है। यह अस्पताल

शिमला पहाड़ के समीप कसौली नामक स्थान में स्थापित किया गया है। यहाँ पर बिना फ़ीस के ही कुत्ते के काटे हुए मनुष्यों का इलाज होता है। गवर्नमेण्ट की रिपोर्ट से पता चलता है कि यहाँ पर १०० में ९९ आदमी अच्छे होते हैं। प्रत्येक आदमी को यह स्थान याद रखना चाहिए; और ऐसा मौक़ा आने पर शीघ्र ही रोगी को पहुँचा देना चाहिए। यदि रोगी ग़रीब होने के कारण वहाँ जाने में असमर्थ हो, तो अपने समीप के थाने में प्रार्थना-पत्र भेजकर गवर्नमेण्ट से सहायता प्राप्त करके वहाँ जा सकता है। ग़रीबों के लिए सहायता देना सरकार का नियम है।

कीटादि दंशन—भ्रमर, शहद की मक्खी, ततैया, बिच्छू आदि के काटने पर पहिले दंशन-स्थान को छुरी से चीर कर थोड़ा ख़ून बाहर निकाल देना चाहिए। बाद को उस स्थान में एमोनिया या स्पिरिट-कैम्फ़र अथवा सरसों या तारपीन का तेल लगा देना चाहिए। तम्बाकू के गुल का नस्य अथवा एक प्याज़ को काटकर लगा दे। अपामार्ग की जड़ को घिसकर लगाने से भी विशेष लाभ होता है। बिच्छू के काटने पर तुरन्त बन्धन बाँध, थोड़ा ख़ून निकाल कर दंशन-स्थान में अपामार्ग की जड़ घिसकर लगाने से अथवा कौंच के बीज को या जहरमोहरे को घिस कर लगाने से उसी समय पीड़ा शान्त हो जाती है। चूना और नौसादर दोनों बराबर मिलाकर रख ले, इसको एमोनिया कहते हैं। इसके लगाने या सुँघाने से शीघ्र ही लाभ होता है। मच्छर आदि किसी विषैले

कीड़े के काटने से दंशन-स्थान में सूजन तथा दर्द के होने पर स्पिरिट-कैम्फ़र या नीबू का रस घिस कर गरम चूना लगा देने से शान्ति हो जाती है। मकड़ी के काटने पर दंशन-स्थान में नीबू का रस, घी और नमक मिला कर लगाना चाहिए।

नाक, कान और आँखों में कीड़े आदि का गिरना—यदि आँख में कोई कङ्कड़, कीड़ा और तृण आदि पड़ जाय, तो आँख के पलक को उठाकर किसी साफ़ कपड़े के किनारे की बत्ती सी बनाकर धीरे से उसको बाहर निकाल देना चाहिए। आँख को किसी चीज़ के पड़ने पर मसलना न चाहिए। यदि आँख में चूना, कोयला या तम्बाकू का गुल पड़ जाय, तो उसी समय आँख में दही डाल देना चाहिए; और चूने में बुझा हुआ नीबू का साफ़ रस दस बूँद एक छटाँक जल में मिला कर किसी साफ़ कपड़े को उसमें भिगो आँख में पट्टी बाँधनी चाहिए। बालू या किसी लोहे आदि धातु का टुकड़ा आँख में गिरने पर एरण्ड का छिलका घिस कर लगाना चाहिए। कान में किसी कीड़े के प्रवेश होने पर गरम तेल, शराब, परमैंगनेट पुटाश का जल या रीठे का पानी डालने से कीड़ा मर जायगा। फिर उसको पिचकारी द्वारा निकाल देना चाहिए। नाक में किसी चीज़ के पड़ जाने पर नस्य लेकर छींक से उसे बाहर निकालना चाहिए। गले में यदि मछली का काँटा अटक गया हो, तो रोटी, भात, केला आदि किसी कठिन चीज़ को निगलने से शीघ्र ही नीचे उतर जाता है। कोमल चीज़ के अटकने पर उसे उँगली द्वारा नीचे ठेल देना चाहिए और किसी खुरदरी

तथा कठिन चीज़ के अटकने पर गले में उँगली द्वारा वमन करा कर निकाल देना चाहिए।

हड्डी का टूटना और हट जाना—शरीर के गुल्फ (टख़ना), प्रणिबन्ध (कलई) आदि स्थान एक प्रकार के सफ़ेद फ़ीते के सदृश रज्जुओं (मोटी नसों) द्वारा बँधे रहते हैं। उनमें चोट के लगने से या दबने, खींचने से ये रज्जु कट जातीं या स्थान से हट जाती हैं। उनके कटने या हट जाने से उस स्थान पर वेदना के साथ सूजन हो जाती है। मुड़े या दबे हुए अङ्ग में पहले कच्ची हल्दी, नमक या सोडा मिला कर गरम करके लेप कर पट्टी बाँध देनी चाहिए। इमली के पत्ते या छाल में कलमी सोरा मिला कर तथा गरम करके लगाने से शोथ और दर्द शान्त हो जाता है। चूना और हल्दी को गरम कर दिन में दो-तीन बार लगाने से भी दर्द और शोथ शान्त हो जाता है। यदि कोई हड्डी टूट गई हो या हाथ-पैर आदि के जोड़ के स्थान की रज्जुओं के कट जाने से अलग हो गई हो, तो पहिले हटी हुई हड्डी को अपने स्थान में रख कर बाँस की खपची चारों तरफ़ लगाकर तथा भीतर रूई भर कर कपड़े से बाँध दे; परन्तु बन्धन ढीला न बँधे जिससे हड्डी मुड़ कर टेढ़ी हो जाय। दो-तीन सप्ताह के बाद उसको खोल कर गरम जल से सेंक कर गरम घी की मालिश कर दे। यदि फिर भी उस स्थान में दर्द होता हो, तो दुबारा उसी तरह बाँध दे। यदि हड्डी टूट कर बाहर निकल आई हो और ख़ून निकलता हो, तो उसी समय टूटे हुए स्थान से कुछ ऊपर कपड़े से कस कर बाँधने से

ख़ून निकलना बन्द हो जायगा। किन्तु इस विषय में सावधानी रखनी चाहिए कि क्षत-स्थान में धूल, कीचड़ आदि किसी प्रकार की ख़राब चीज़ें न पड़ने पावें। यदि हड्डी टूट गई हो, परन्तु बाहर न निकली हो और वह स्थान सूज गया हो, तो उसमें बर्फ़ रखना और ज्यों का त्यों रख कर डॉक्टर से चिकित्सा करानी चाहिए।

प्रबल आघात व मूर्च्छा—अधिक चोट के लगने से या मानसिक उत्तेजना के कारण जीवन-शक्ति में कमजोरी और ढीलापन होने से शरीर शिथिल हो जाता है। इस अवस्था में स्पिरिट कैम्फ़र बीस बूँद दो रत्ती कपूर-जल में मिला कर खिलाना चाहिए। रोगी को गर्म कपड़ों के बिछौने में सुला कर उसके बग़ल और हाथ-पैरों में स्वेद देना चाहिए। यदि कोई एकाएक मूर्छित हो जाय, तो उसे उसी स्थान पर सुला देना चाहिए। जल्दी ही बैठाने के उपाय करने या उसे उठाकर दूसरी जगह ले जाने से हानि होती है। साधारणतः समतल स्थान में सुला कर रोगी के मुख में ठण्ढे जल की छींटें मारने से मूर्च्छा जाती रहती है। यदि मूर्च्छा सहज में शान्त न हो, तो काली मिर्च के सूक्ष्म चूर्ण का नस्य बना कर देना चाहिए। इसके सिवाय तीक्ष्ण अञ्जन तथा लहसुन आदि तीक्ष्ण औषधियों को निचोड़ कर नस्य आदि का प्रयोग करना चाहिए। मूर्च्छित आदमी को देख कर भीड़ के साथ घेर न लेना चाहिए; क्योंकि रोगी के निकट अधिक मनुष्यों के इकट्ठे होने से वायु दूषित होकर रोग में अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है।

रोगों में होने वाली अपस्मार, हिस्टीरिया आदि की मूर्च्छा में चिकित्सा तथा उपचार का वर्णन पहले ही कर दिया गया है।

जल में डूबना—यदि कोई जल में डूब गया हो, तो जहाँ तक हो सके शीघ्र निकालने की चेष्टा करनी चाहिए। तभी बचने की आशा हो सकती है। यदि बच्चा पानी में डूबा हो, तो उसके पैरों को ऊपर और सिर नीचे करके खूब झकोरे देने चाहिए; और एक आदमी उसके पेट को तथा एक उसकी छाती के दोनों तरफ़ पकड़ कर दबावे, जिससे पेट व छाती का पानी बाहर निकले और वायु का सञ्चार होने लगे। यदि रोगी जवान हो, तो उसको औंधा सुला कर सिर कुछ नीचा करके पेट और छाती के ऊपर पकड़ कर जोर से दबाता और छोड़ता जावे। दो-तीन मिनिट तक इस प्रकार करने से छाती तथा पेट से अधिक परिमाण में जल बाहर निकल आता है। इसके बाद शीघ्र ही रोगी को सूखे हुए कम्बल पर सुलाकर सम्पूर्ण शरीर को अच्छी तरह पोंछ कर निम्नलिखित रीति से कृत्रिम श्वास-क्रिया आरम्भ कर दे।

रोगी को खाट पर सीधा सुलाकर शिर थोड़ा नीचे झुका दे और एक मनुष्य खाट पर रोगी के सम्मुख बैठ उसकी जीभ को कुछ बाहर निकाल कर दबा रक्खे। दूसरा मनुष्य रोगी के शिर के पीछे बैठ कर उसके हाथों को अपनी तरफ़ खींचकर दोनों तरफ़ सीधा कर ले और हाथों को कोहनी से कुछ आगे की तरफ़ पकड़, ऊपर को अपनी तरफ़ उठा कर फिर रोगी के पसवाड़ों की तरफ़ सीधा नीचे को झुकाकर चिपका दे। इस प्रकार बार-बार

हाथों को शिर की तरफ़ खींचकर फिर पसलियों की तरफ़ सिकोड़ देने से, अर्थात् हाथों के सङ्कोचन-प्रसारण से फेफड़े में बार-बार श्वास-वायु आने-जाने लगता है। हाथों का सङ्कोचन-प्रसारण अति शीघ्र न करना चाहिए; केवल एक मिनिट में पन्द्रह-बीस बार करना ही उचित है। इस प्रकार कृत्रिम श्वास-क्रिया के करने से पन्द्रह मिनिट से लेकर आध घण्टे में स्वाभाविक श्वास-क्रिया उत्पन्न होने लगती है। यदि रोगी अच्छी तरह श्वास लेने लगा हो, तो बचने की पूर्ण आशा रहती है। जब स्वाभाविक श्वास-क्रिया होने लगे, तो धीरे-धीरे कृत्रिम श्वास-क्रिया बन्द कर देनी चाहिए; और रोगी के शरीर को पोंछ कर गरम कम्बल या बिछौने पर सुला देना चाहिए। इसके बाद असली कस्तूरी दो रत्ती और मकरध्वज एक रत्ती खरल में पीस कर पान के रस तथा शहद के साथ तीन-चार घण्टे के अन्तर से खिलाना चाहिए, अथवा असली ब्राण्डी को छः माशा लेकर दूध के साथ दो-तीन घण्टे के अन्तर से पिलाते रहना चाहिए।

यदि जल में डूबे हुए मनुष्य को भयानक ज्वर तथा श्वास की अधिकता हो, तो किसी योग्य चिकित्सक की चिकित्सा करनी चाहिए। अनेक स्थानों में ऐसा देखा गया है कि जल-मग्न रोगी के बच जाने पर उसको भयानक श्वसनक ज्वर (निमोनिया) हो जाता है; इसलिए योग्य चिकित्सक की शरण लेना बहुत अच्छा है।

॥ समाप्त ॥

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला

के

ग्राहक बनिए !

इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य सामाजिक जीवन में क्रान्ति पैदा कर देना, स्त्रियों के स्वत्वों के लिए अन्यायी समाज से झगड़ना और स्त्रियों के हित की बातें उन्हें बतलाना है। इन्हीं सब बातों को सामने रख कर इसमें बराबर नई-नई और उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। यही कारण है कि इसके स्थायी-ग्राहक टक-टकी लगाए हमारी नई पुस्तकों की राह देखा करते हैं। आप भी इस ग्रन्थमाला के स्थायी-ग्राहक बन कर उसके लाभ देख लीजिए।

नियमावली

१—आठ आने 'प्रवेश-फ़ीस' देने से कोई भी स्थायी-ग्राहक बन सकता है। वह 'प्रवेश फ़ीस' एक साल के बाद, यदि मेम्बर न रहना चाहे, तो वापिस भी कर दी जाती है।

२—स्थायी-ग्राहकों को हमारे कार्यालय की प्रकाशित कुल पुस्तकें पौनी क़ीमत में दी जाती हैं।

३—ग्राहक बनने के समय के पहले प्रकाशित हुए ग्रन्थों का

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

मङ्गल-प्रभात

[ले० स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी० ए०, 'हृदयेश']

इस सुन्दर उपन्यास में मानव-हृदय की रङ्गभूमि पर वासना के नृत्य का दृश्य दिखलाया गया है। सामाजिक अत्याचार और बेमेल विवाह का भयङ्कर परिणाम पढ़ कर जहाँ हृदय काँप उठता है, वहाँ विशुद्ध प्रेम, अतुल सहानुभूति और समाज की हित-कामना इत्यादि के सुन्दर दृश्यों को देख कर हृदय में एक अनिर्वचनीय शान्ति का स्रोत बहने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत उपन्यास में इस विश्व की रङ्गभूमि पर अभिनीत होने वाले पाप और पुण्य के कृत्यों का बड़ा ही मधुर-सुन्दर विवेचन किया गया है।

छपाई-सफ़ाई बहुत सुन्दर है, साथ ही मनोहर सुनहरी समस्त कपड़े की जिल्द से भी पुस्तक अलङ्कृत की गई है। पृष्ठ-संख्या लगभग ८००; काग़ज़ ४० पाउण्ड एन्टिक, मूल्य ४) मात्र। स्थायी-ग्राहकों के लिए ३।।) रु०।

मानिक-मन्दिर

[ले० श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

इस पुस्तक की भूमिका में श्री० प्रेमचन्द जी लिखते हैं :—

"उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरञ्जकता है। इस लिहाज़ से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

वनमाला

[ले० स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी० ए० 'हृदयेश']

इस पुस्तक की उपयोगिता और सरसता को आप लेखक के नाम ही से मालूम कर सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'हृदयेश' जी ने अपनी लेखन-शैली द्वारा हिन्दी-संसार को चकित कर दिया है और कई बार वे स्वर्ण-पदक भी प्राप्त कर चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में 'हृदयेश' जी की लिखी हुई 'चाँद' में प्रकाशित सभी गल्पों का संग्रह किया गया है। इन गल्पों द्वारा सामाजिक अत्याचारों तथा कुरीतियों का हृदय-विदारक दिग्दर्शन कराया गया है; और इस विश्व के रङ्ग-मञ्च पर होने वाले पाप और पुण्यमय कृत्यों का मधुर और सुन्दर विवेचन किया गया है। जिन सज्जनों ने 'हृदयेश' जी के उपन्यासों और गल्पों को पढ़ा है, उनसे हमारी प्रार्थना है कि इन छोटी, परन्तु सार-गर्भित एवं सरल भाषायुक्त गल्पों को भी पढ़ कर अवश्य लाभ उठावें। पुस्तक के अन्त में २ छोटे-छोटे रूपक (नाटक) भी दिए गए हैं।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अत्यन्त सुन्दर और पृष्ठ-संख्या लगभग २५० है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रुपए; स्थायी-ग्राहकों के लिए २।) रु० मात्र !

विधवा-विवाह-मीमांसा

[ले० श्री० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में नीचे लिखी सभी बातों पर बहुत ही योग्यता-पूर्ण और ज़बरदस्त दलीलों के साथ प्रकाश डाला गया है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है ? मुख्य प्रयोजन क्या और गौण प्रयोजन क्या ? आजकल विवाह में किस-किस प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है ? (२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान ? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है, तो किन-किन बातों में ? (३) पुरुषों का पुनर्विवाह और बहुविवाह धर्मानुकूल है या धर्म-विरुद्ध ? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित ? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि। (६) स्मृतियों की सम्मति। (७) पुराणों की साक्षी। (८) अङ्गरेज़ी-क़ानून (English Law) की आज्ञा। (९) अन्य युक्तियाँ। (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर :—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा। (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं; (ई) कलियुग और विधवा-विवाह; (उ) कन्यादान-विषयक आक्षेप; (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न; (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है; (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना;